" सरस्वती देवयन्तो हवन्ते "

प्राचीन राजस्थानी गीत

भाग—६

(राजस्थानी कवि)

सम्पादक—

गोवर्द्धन शर्मा एम.ए.

★

प्रकाशक—

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

प्रथम संस्करण

वि० सं० २०१३

मूल्य

२।।)

प्रकाशक —
अध्यक्ष
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

मुद्रक-
व्यवस्थापक
उदयपुर प्रेस, उदयपुर

* अनुक्रमणिका *

संस्था की ओर से

●●

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर के अन्तर्गत आज से १६ वर्ष पूर्व-प्राचीन साहित्य की शोध-खोज, संग्रह-संपादन और प्रकाशन-कार्य के लिये "प्राचीन-साहित्य-खोज विभाग" की स्थापना की गई थी। तब से आज तक इसके नाम में, कार्य और प्रवृतियों के विकास और विस्तार के साथ परिवर्तन और परिवर्धन होते रहे हैं। इस समय इसे साहित्य-संस्थान के नाम से अभिहित किया जाता है। प्राचीन साहित्य की शोध-खोज के अलावा आज इसमें लोक-साहित्य, इतिहास, पुरातत्व एवं कला-विषयक सामग्री का संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन किया जाता है। नवीन साहित्य के सृजन एवं विकास के लिये क्षेत्र और वातावरण पैदा करने का प्रयत्न किया जाता है। प्रतिभाशाली और उदीयमान लेखकों की रचनाओं के प्रकाशन की समुचित व्यवस्था करने के लिये साधन सुविधाएं एकत्रित की जाती हैं और उनके लिये अवसर उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। साहित्य-संस्थान में विगत डेढ़ युग से भारतीय साहित्य, उसकी संस्कृति और विविध कलात्मक सामग्री के पुनर्शोधन के लिये कार्य किया जाता रहा है। संस्थान की ओर से अब तक कई महत्वपूर्ण प्रकाशन किये जा चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं में से एक है।

उन्नीस वर्षों के अथक परिश्रम और अध्यवसाय के परिणाम स्वरूप ही आज प्राचीन राजस्थानी साहित्य के प्रकाशन का कार्य साहित्य संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ के द्वारा किया जा रहा है। विगत वर्षों के कार्य-काल में साहित्य संस्थान के द्वारा हजारों की संख्या में प्राचीन राजस्थानी गीत (डिंगल) लोक गीत, लोक वार्ताएँ, लोक कहावतें, ख्यातें और मुहावरें आदि एकत्रित किये जा चुके हैं। लोक कहावतों और लोक गीतों की अब तक काफी पुस्तकें संस्थान की ओर से प्रकाशित की जा चुकी हैं।

राजस्थान में प्राचीन राजस्थानी और हिन्दी-साहित्य का अखूट भण्डार है। इसका अन्वेषण और सम्पादन किया जाय तो राजस्थानी जीवन के सामा-

जिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक आदि विभिन्न अंगों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है। साहित्य के इतिहास में राजस्थानी प्रतिभाओं का कितना महत्वपूर्ण योग रहा है; इसका समुचित और सही परिचय आज तक विद्वानों और लेखकों को नहीं प्राप्त हो सका है। राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर का निरन्तर यह प्रयास रहा है कि राजस्थान की ऐसी अन्धकाराच्छन्न प्रतिभाओं को प्रकाश में लाया जाय और उनके साहित्य की रस-धारा से जन जीवन को परिचित करवाया जाय।

उपर्युक्त काय कितना मुश्किल और व्यय साध्य है; यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। साहित्य-संस्थान की ओर से अत्यल्प साधनों के होते हुए भी, जितना कार्य किया गया, वह विद्वानों के देखने और सोचने की बात है।

इस वर्ष राजस्थान सरकार की सिफारिश से भारत-सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय के द्वारा ५०,००) की प्रकाशन सहायता स्वीकार की गई है, इसके लिये मैं राजस्थान सरकार के शिक्षा-सचिवालय, उसके विभाग एवं भारत सरकार के शिक्षा-विकास-अधिकारियों और सलाहकारों का अत्यन्त आभारी हूं। विशेष कर डॉ० कालूलालजी श्रीमाली राज्य शिक्षामन्त्री भारत-सरकार, डॉ० पी. डी. शुक्ला, सलाहकार शिक्षा-विकास-सचिवालय एवं डॉ० सोहनसिंहजी आदि के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ; जिन्होंने साहित्य-संस्थान के विकास के लिये कृपा कर सहायता स्वीकृत कराई है।

आशा है; भविष्य में भी सभी का सहयोग निरन्तर मिलता रहेगा।

विनीत:—

जनार्दनराय नागर

प्रोप कुलपति

राजस्थान विश्व-विद्यापीठ, उदयपुर

दीप—मालिका

वि. सं. २०१४

★★
★

प्रकाशकीय

साहित्य-संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर पिछले १६ वर्षों से उदयपुर और राजस्थान में साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, एवं कला विषयक सामग्री की शोध-खोज, संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन का काम करता आरहा है। विशेष कर साहित्य संस्थान ने राजस्थान में यत्र तत्र बिखरे हुए प्राचीन साहित्य, लोक-साहित्य, इतिहास-पुरातत्व और कलात्मक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये निरंतर प्रयत्न किया है। परिणाम स्वरूप लगभग ३० महत्व-पूर्ण और उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। साहित्य-संस्थान के अंतर्गत इस समय (१) प्राचीन-साहित्य विभाग (२) लोक-साहित्य विभाग (३) इतिहास-पुरातत्व विभाग (४) अध्ययन गृह और संग्रहालय विभाग (५) राजस्थानी-प्राचीन-साहित्य विभाग (६) पृथ्वीराज-रासो संपादन विभाग (७) भील-साहित्य संग्रह विभाग (८) नव साहित्य-सृजन कार्य एवं (९) सामान्य विभाग विकसित हो रहे हैं। सामान्य विभाग के अन्तर्गत बून्दी के प्रसिद्ध राजस्थानी कवि श्री सूर्यमल की स्मृति में 'महाकवि सूर्यमल आसन' और प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता महामहोपाध्याय डॉ० गौरीशंकरजी की यादगार में 'ओझा-आसन' स्थापित किया है। संस्थान की मुख-पत्रिका के रूप में त्रैमासिक 'शोध-पत्रिका' का प्रकाशन किया जाता है एवं नवीन उदीयमान लेखकों को लिखने के लिये प्रोत्साहित करने की दृष्टि से उनकी रचनाओं का प्रकाशन कार्य चालू किया गया है। इस प्रकार साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर अपने सीमित और अत्यल्प साधनों से राजस्थानी-साहित्य, संस्कृति और इतिहास के क्षेत्र में विभिन्न विघ्न-बाधाओं के बावजूद भी निरतर प्रगति और कार्य कर रहा है। राजस्थान की गौरव गरिमा की महिमामय झांकी अतीत के पृष्ठों में अंकित है-आवश्यकता है; उसके सुनहले पृष्ठों को खोलने की। साहित्य-संस्थान नम्रता के साथ इसी ओर अग्रसर है।

प्रस्तुत पुस्तक साहित्य-संस्थान के संग्रह से तय्यार की गई है। साहित्य-संस्थान के संग्राहकों ने अनेक स्थानों से ढूंढ ढांढ कर १६,००० के लगभग छन्दों का संग्रह किया है। इस संग्रह में दोहे, सोरठे, कवित्त और गीत आदि कई प्रकार के छन्द सुरक्षित हैं। इन छन्दों में विभिन्न ऐतिहासिक और सामाजिक घटनाओं, व्यक्तियों आदि का वर्णन मिलता है। ये विभिन्न प्रकार के

गीत और छन्द लाखों की संख्या में राजस्थान के नगरों कस्बों एवं गांवों में बिखरे हुए हैं। इनके प्रकाशन से एक ओर साहित्यकारों को राजस्थानी साहित्य का परिचय मिल सकेगा तो दूसरी ओर इतिहास सम्बन्धी घटनाओं पर भी प्रकाश पड़ेगा। इस प्रकार साहित्य-संस्थान, राजस्थान में पहली संस्था है, जो शोध-खोज के क्षेत्र में नियमित काम कर रही है।

इस प्रकार के संग्रह अब तक कई निकाले जा सकते थे लेकिन साधन सुविधाओं के अभाव में साहित्य संस्थान विवश था। इस वर्ष प्राचीन राजस्थानी साहित्य और लोक-साहित्य के प्रकाशन-कार्य के लिये भारत सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय ने साहित्य-संस्थान को कृपा कर ५७,०००) सत्तावन हजार रुपये की सहायता प्रदान की है; उसी से उक्त पुस्तक का प्रकाशन-कार्य सम्पन्न हो सका है।

इस सहायता को दिलाने में राजस्थान सरकार के मुख्यमंत्री (जो शिक्षा-मंत्री भी हैं) माननीय श्री मोहनलाल सुखाड़िया और उनके शिक्षा सचिवालय के अधिकारियों का पूरा योग रहा है। इसके लिए मैं, उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूं। साथ ही भारत-सरकार के उप-शिक्षा सलाहकार डॉ० पी० डी० शुक्ला, डॉ० भान तथा श्री सोहनसिंह एम.ए. (लंधन) का भी अत्यन्त आभारी हूं; जिन्होंने सहायता की रकम शीघ्र और समय पर दिलवाई। सच तो यह है कि उक्त महानुभावों की प्रेरणा और सहायता से ही यह रकम मिल सकी है। और संस्थान अपने ग्रन्थों का प्रकाशन करवा सका है। भारत-सरकार के राज्य शिक्षा-मन्त्री डॉ० कालूलालजी श्रीमाली के प्रति क्या कृतज्ञता प्रकट की जाय; यह तो उन्हीं का अपना काम है। उनके सुझाव और उनकी प्रेरणा से संस्थान के काम में निरन्तर विकास और विस्तार हुआ है और आगे भी होता रहेगा। इसी आशा और विश्वास के साथ मैं, उनका आभार मानता हूँ। अन्य उन सभी का आभारी हूं; जिन्होंने इस काम में सहायता दी है।

विनीत—

बसन्त पंचमी
२०१४, सन १९५८

गिरधारीलाल शर्मा
अध्यक्ष
साहित्य-संस्थान

प्रस्तावना

राजस्थानी साहित्य

●●

एक परिचय

राजस्थानी भाषा में विपुल साहित्य उपलब्ध होता है। प्रसिद्ध भाषाविद् और प्राचीन साहित्य के विद्वान मुनि जिन-विजय का कथन है— "हिसाब लगाने से पता लगता है कि कोई दो सौ वर्ष पूर्व ही, राजस्थान के भिन्न २ नगरों और स्थानों में, जितनी प्राचीन ग्रन्थराशि विद्यमान थी, उतनी शायद पूरे भारतवर्ष में मिलकर भी नहीं थी। जब से अँग्रेज इस देश में आये, तब से हमारे यहां की यह प्राचीन ग्रन्थराशि लुटने लगी और हजारों की संख्या में ये ग्रन्थ रत्न यहां से बाहर जाने शुरु हुए। इङ्गलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी व इटली जैसे यूरोपीय देशों के राजकीय पुस्तकालयों में जो भारतीय ग्रन्थ अभी विद्यमान हैं और जिनकी सूचियां प्रकाशित की गई हैं, उनके देखने से पता चलता है कि कितने अलभ्य और कितने अमूल्य ग्रन्थ, हमारे यहां से वहां चले गये हैं। अमेरिका और रूस के बड़े बड़े पुस्तकालयों में भी हमारे यहां से गये हुए ऐसे सैंकड़ों ही ग्रन्थ उपलब्ध हो रहे हैं।" यह एक बहुत बड़ा पर कटु सत्य है। हमारी अतीत, सभ्यता और सँस्कृति की यह मूल्यवान धरोहर आज हम खो बैठे हैं। ये सब ग्रन्थ रत्न चाहे विदेश में रखे हुए हों पर सुरक्षित तो हैं। खेद है कि हमारे राज्य में सैंकड़ों स्थानों पर पड़े हुए हजारों श्रेष्ठ हस्तलिखित ग्रन्थ आज भी उपेक्षा से पड़े हुए हैं। उनमें से अनेक काल के प्रवाह में पड़े हुए सड़ रहे हैं, अन्य दीमकों का आहार बन रहे हैं। जिन हाथों में ये ग्रन्थ पड़े हुए हैं, वे अज्ञानी हैं। ऐसे लोग जिनके यहां ऐसे ग्रन्थ पड़े हुए हैं दूसरों को बताना

बुरा समझते हैं। वे बड़े संकीर्ण होते हैं और किसी भी शर्त पर अपने पूर्वजों की रचनाएं दिखाने को तैयार नहीं होते। फलस्वरूप हम धीरे २ बहुत बड़ी हानि उठाते जा रहे हैं। अस्तु!

इस समूचे साहित्य को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। (१) पद्य (२) गद्य। यह कैसी विचित्र बात है कि मनुष्य ने गद्य का प्रयोग करना, अपने दैनिक जीवन में बातचीत करना पद्य की अपेक्षा पहले सीखा किन्तु उसका प्राचीनतम साहित्य पद्य में लिखा मिलता है। संसार के सभी देशों में पद्य-साहित्य का आविर्भाव गद्य साहित्य के काफी पहले होता है! यही विशेषता हमें राजस्थानी साहित्य में दीख पड़ती है। राजस्थानी का सबसे प्रथम कवि शालिभद्र सूरि माना जाता है, जिसने ११८५ ई० मे 'भरत बाहुबली रास' नामक ग्रन्थ लिखा। इस समय तक राजस्थानी और गुजराती भाषाओं का पृथक्करण नहीं हुआ था। राजस्थान और गुजरात तब आज की तरह भिन्न२ प्रदेश नहीं थे, बल्कि एक ही सांस्कृतिक इकाई थे। वहां की भाषा एक ही थी। गुजराती लोक साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान स्व० मेघाणीजी ने कहा है— "अपनी मातृभाषा का नाम था राजस्थानी। मेड़ता की मीराँ इसी में पदों की रचना करती और गाया करती थी। इन पदों को सौराष्ट्र की सीमा तक के मनुष्य गाते तथा अपना करके मानते थे। चारण का दूहा राजस्थान की किसी सीमा में से राजस्थानी भाषा में अवतरित होता तथा कुछ वेश बदल कर काठियावाड़ में भी घर-घराऊ बन जाता। नरसी मेहता गिरनार की तलहटी में प्रभु पदों की रचना करता और ये पद यात्रियों के कण्ठों पर सवार होकर, जोधपुर, उदयपुर पहुंच जाया करते थे।"

"इस जमाने का पर्दा उठा कर यदि आप आगे बढ़ेंगे तो आपको कच्छ, काठियावाड़ से लेकर प्रयाग पर्यन्त के भूखण्ड पर फैली हुई एक भाषा दृष्टि-गोचर होगी...... । इस व्यापक बोलचाल की भाषा का नाम राजस्थानी। इसी की पुत्रियां फिर ब्रजभाषा, गुजराती और आधुनिक

राजस्थानी नाम धारण कर स्वतन्त्र भाषाएं बनीं।" लगभग सोलहवीं शती में गुजराती और राजस्थानी का अन्तर गहरा जान पड़ता है। उसके पहले 'जूनी गुजराती' अथवा 'जूनी राजस्थानी' एक ही भाषा थी। इसी को टेसीटेरी ने 'प्राचीन-पश्चिमी राजस्थानी' नाम दिया है। इसी भाषा में राजस्थानी गद्य के प्रामाणिक प्राचीन उदाहरण विक्रम की चौदहवीं शताब्दी से मिलते हैं।(१) अतः हम लगभग बारहवीं शताब्दी से राजस्थानी पद्य और चौदहवीं शताब्दी से राजस्थानी गद्य का आरम्भ मान सकते हैं।

गद्य साहित्य पर हम आगे चलकर विचार करेंगे। पद्य साहित्य का विषय प्रतिपादन की दृष्टि से निम्न विभाजन स्वीकार कर लेना उपयोगी होगा।

(१) चारण-भाट साहित्य
(२) जैन साहित्य
(३) सन्त साहित्य व धार्मिक साहित्य
(४) अन्य साहित्य—यथा लौकिक साहित्य

यह विभाजन रेखा बड़ी लचीली है। अनेक चारण भाटों ने लौकिक प्रेमाख्यानों की सृष्टि की है। इसी प्रकार कई चारण कवियों ने महाभारत, रामायणादि धर्म ग्रन्थों का राजस्थानी में अनुवाद किया है। इस दृष्टि से चारण जाति के होने पर भी हमें उनको लौकिक-साहित्य-रचयिता अथवा धार्मिक-साहित्य-रचयिता के रूप में ग्रहण करना होगा। इसी प्रकार चारणेतर जाति के उन कवियों को जिनकी काव्य शैली चारण-भाट शैली ही है, चारण-साहित्य-लेखक के रूप में गृहीत करना पड़ेगा। अतः यह विभाजन अध्ययन की सुविधा से किया गया है। आगे चलकर हम इस सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन करेंगे। गद्य भी बातों (कहानियों) ख्यातों (ऐतिहासिक वृत्तों), वचनिकाओं के रूप में विपुल परिमाण में पाया जाता है। इस सम्बन्ध में फिर कभी विचार किया जायेगा।

---

१. शिवस्वरूप शर्मा 'अचल' 'जनमन' प्रवेशांक पृष्ठ १७

राजस्थानी साहित्य का अधिकतम अंश 'भाट-चरण साहित्य' के अन्तर्गत गृहीत किया जा सकता है। इसे हम अपनी भाषा का प्रधान साहित्य कह सकते हैं। इस साहित्य का निर्माण राजस्थान के कवियों ने अपनी समस्त अनुभूति और जीवन देकर किया है, और इसी लिए इस शैली में रचित साहित्य में अनोखा बांकापन है। इस साहित्य में वीरता मानों सरकार होकर बोलती है। इस शैली में रचित अनेक वीर रसात्मक ग्रन्थ विश्व-साहित्य में भी अपनी सानी नहीं रखते, यही कारण है कि अनेकों देशी-विदेशी विद्वानों ने हमारे साहित्य की भूरि भूरि प्रशंसा की है। यह साहित्य निम्नलिखित रूपों में उपलब्ध है:—

(१) प्रबन्ध काव्यों के रूप में।

(२) गीतों के रूप में। } मुक्तक काव्य।
(३) स्फुट छंदों के रूप में। }

प्रबन्ध काव्य — प्रबन्ध काव्यों के रूप में अपभ्रंशकाल से आज तक अनेक ग्रन्थ लिखे जाते रहे हैं। ग्रन्थालयों, उपाश्रयों व अनेक चारणभाटों के संग्रहों में ऐसे अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। वैसे तो इन प्रबन्ध काव्यों में विषय और अभिव्यक्ति की दृष्टि से काफी भिन्नता दीख पड़ती है, परन्तु मोटे तौर पर सब में कुछ सामान्य विशेषताएँ मिल जाती हैं। ये प्रबन्ध काव्य किसी राजा, सामंत अथवा कवि के उपास्य देव के चरित को उपजीव्य बना कर लिखे गए हैं। कुछ काव्य ग्रन्थों को अपवाद स्वरूप छोड़कर, हम सभी प्रबन्ध काव्यों में विषय वस्तु के ऐतिहासिक आधार, यथार्थ जीवन, वास्तविक भावभूमि और सहज अभिव्यक्ति का अभाव पाते हैं। इन प्रबन्ध काव्यों में तथ्य और कल्पना, इतिहास और रोमान्स का विचित्र समन्वय है। ऐसा करने में कवि को वीररस का वर्णन करने के लिए अनेक कल्पित युद्धकारणों की उद्भावना करनी पड़ी है। सुन्दर राजकुमारियों का हरण और ऐसा करने में युद्ध, बस कवि को अपने चरित नायक के शौर्य प्रदर्शन का अवसर मिल ही तो

गया। उसकी उदात्त कल्पना और काव्यकौशल अजीबसा समा बांधदेता है। हमारे विद्वान इन वर्णनों में ऐतिहासिकता ढूँढने की भयंकर भूल कर बैठे। उन्हें निराश होना पड़ा और फिर वे लोग एक स्वर से इन काव्य ग्रन्थों को महत्वहीन समझने लगे। चम्मच से चाकू के कर्म की उम्मीद करना चतुराई नहीं कही जा सकती। अस्तु।

विवाहों के बाद ऐश आराम। इससे कवि की शृंगारिक प्रवृति को खुल कर खेलने का मौका मिलता था। वह मृगया, उत्सव, संयोग और वियोग शृँगार बारहमासा, षट्ऋतु वर्ण आदि अनेक परम्परागत वस्तु विन्यास का आश्रय ले लेता था, और अपने काव्य को अधिक रमणीय बना देता था। इस समय के साहित्य की कथानक रूढ़ियों और मुख्य प्रवृतियों पर अन्यत्र विचार किया गया है, अतः अभी हम इस विषय को नहीं उठायेंगे।

प्रायः सभी प्रबन्ध काव्यों में चरित नायक की वंशावली दी गई हैं। इन वं ावलियों का प्रारम्भ बहुधा किसी दिव्यगुणोत्पन्न महापुरुष या देवी, देवताओं से जोड़ा जाता है। ऐसा करने में कवि कोई अनौचित्य नहीं देखता। उदाहरण के लिए रासो के चरित नायक का जन्म 'अग्नि से उत्पन्न वंश' विशेष में बताया गया है और 'सूरज प्रकाश' में कवि करणीदान ने राज-वंशावली का प्रारम्भ ब्रह्मा से किया है। इस परिपाटी का निर्वाह प्रायः सभी ग्रन्थों में किया गया है।

कथातत्व में दृढ़ता और रोचकता लाने के लिए कवि ने अनेकों बार अतिप्राकृत प्रसंगों की भी अवतारणा की है। किसी भी ऐसी संभाव्य घटनावली की उद्भावना करने में कवि को कोई हिचक अनुभव नहीं होती थी, जो उसके आश्रयदाता के शौर्य, साहस, चतुराई. दानशीलता आदि उच्च गुणों को प्रदर्शित करने में अथवा अपने बहुक्षेत्रीय ज्ञान का परिचय देने में सहायक हो सकती थी। अतः प्रायः सभी प्रबन्ध काव्यों में अतिप्राकृत-प्रसंगों की उपलब्धि होती है।

रीतिकालीन प्रवृतियों के पोषक सामन्तवादी तत्व रहे हैं। ऐसी

दशा में यदि हमें राजस्थानी साहित्य में, जो कि ऐसे प्रदेश में निर्मित हुआ है, जहाँ शृंगारी व दरबारी कवियों को आश्रय मिला है, यह प्रवृति न मिले तो आश्चर्य की बात होगी। अनेक कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के चरित्र और कीर्ति को लेकर लक्षण ग्रन्थों अथवा रीति ग्रन्थों का निर्माण किया है। उदाहरणार्थ देवगढ़ (देवलिया प्रतापगढ़) के रावत हरिसिंह की कीर्ति को लेकर सम्वत् १७१५ में जोगीदास नामक चारण ने 'हरि पिंगल प्रबन्ध' नामक ग्रन्थ लिखा। भगवान राम की कथा को लेकर भी अनेक काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना की जा चुकी है यथा—'रघुवर जस प्रकास' 'रघुनाथ रूपक' आदि। 'हरि पिंगल प्रबन्ध' की यह परम्परा 'लखपत गुण पिंगल' से होती हुई ठेठ २० वीं० शताब्दी के मुरारिदान (जोधपुर) कृत 'जसवत जसो भूषण' तक चली आई है।

ये प्रबन्ध काव्य इतनी अधिक संख्या में है और अज्ञात स्थलों पर पड़े हुए हैं कि इन सब के संबंध में अधिकृत रूप में कुछ कहना संभव नहीं है। सूची बनाना ही कठिन है। तब भला विचार और विवेचन के लिए अवसर व सुविधा कैसे मिले। फिर भी हम यहां अद्यावधि प्राप्त प्रबंध काव्यों का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे। प्रधान प्रधान ग्रन्थ ये हैं।

(१) चंद बरदायी कृत पृथ्वीराज रासौ, (२) केशवदास कृत गुणरूपक, (३) किशोरदास कृत राजप्रकाश, (४) किसनोजी आढ़ा कृत भीम विलास, (५) रघुवरजस प्रकाश, (६) सूजाजी कृत राव जैतसी छंद, (७) बादर कृत वीरमायण (८) गोपीनाथ कृत ग्रन्थराज (९) जोगीदास कृत हरिपिंगल प्रबन्ध (१०) करणीदान कृत सूरजप्रकाश (११) सागर कृत रतनजस प्रकाश (१२) सूर्यमल्ल कृत वंशभास्कर (१३) वीठू मेहाकृत पाबूजी रो छंद (१४) डूंगर सी कृत शत्रुसाल रासौ (१५) जोधराज कृत हमीर रासौ (१६) पृथ्वीराज कृत बेलिक्रिसन रुकमणि री (१७) गिरधर कृत सगतसिंह रासो (१८) मानकवि कृत राजविलास (१९) हरिनाम रचित केसरीसिंह समर (२०) वीरभाण कृत राजरूपक (२१) दलपत कृत खुमान रासौ

(२२) नरपति नाल्ह कृत बीसलदेव रासौ (२३) कुम्भकर्ण सांदू रचित रतनरासौ (२४) पृथ्वीराज सांदू कृत अभयविलास आदि, आदि ।

इस सूची से हमें पता चलता है कि ग्रन्थों का नामकरण प्रायः चरित नायकों को लेकर किया गया है यथा—

रासौ:—बीसलदेव रासौ, रतन रासौ, खुमांण रासौ, पृथ्वीराज रासौ आदि ।

प्रकाश:—सूरज प्रकाश, राजप्रकाश, रतनजस प्रकाश, रघुवरजस प्रकाश आदि ।

विलास:—भीमविलास, राजविलास, अभयविलास, विजैविलास आदि ।

रूपक:—राजरूपक, रतनरूपक महाराजा गजसिंहजी रो रूपक आदि ।

छंदों के आधार पर:—पाबूजी रो छंद, वेलि क्रिसन रुकमणी री आदि ।

अन्य आधार:—विभिन्न ग्रन्थों के आधार पर भी, जो इतर भाषा में लिखे गए हैं, राजस्थानी कवियों ने अपनी कृतियों का नाम करण किया है यथा— वीरमायण, केसरीसिंह समर, ग्रन्थराज, वंशभास्कर आदि ।

ऊपर दिये गये ग्रन्थों में से अधिकांश ग्रन्थ दीर्घाकार हैं, व वीर और श्रृंगार रस को आधार बना कर लिखे गए हैं । इनके अतिरिक्त अनेक खण्ड काव्य भी मिलते हैं- यथा सांयाभूला का 'नागदमण' मुरारिदान कृत गुणविजै व्याह, वीठलदास का रूकमणीहरण आदि आदि ।

मुक्तक–काव्य

डिंगल गीत— 'गीत' छंदों में मिलने वाली रचनायें असंख्य हैं । उदयपुर के साहित्य संस्थान ने १८००० डिंगल गीतों का संग्रह कर लिया है और अभी तक इस दिशा में बहुत काम करना बाकी है । सारा राजस्थान इस ऐतिहासिक साहित्य से भरा पड़ा है । ओझाजी के शब्दों में "राजपूत-राजाओं, सरदारों आदि के वीर कार्यों, युद्धों में लड़ने या मर जाने, किसी

बड़े दान के देने या उनके उत्तम गुणों अथवा राणियों तथा ठकुरानियों के सती होने आदि के संबंध के डिंगल भाषा में लिखे हुए हजारों गीत मिलते हैं। ये गीत चारणों, भाटों, मोतीसरों और भोजकों के बनाये हुए हैं। इन गीतों में से अधिकतर की रचना वास्तविक घटनाओं के आधार पर की गई है, परन्तु इनके वर्णनों में अतिशयोक्ति भी पाई जाती है। युद्धों में मरने वाले जिन वीरों का इतिहास में संक्षिप्त विवरण मिलता है, उनकी वीरता का ये अच्छा परिचय कराते हैं। गीत भी इतिहास में सहायक अवश्य होते हैं। राजाओं, सरदारों, राज्याधिकारियों, चारणों, भाटों, मोतीसरों आदि के यहां इन गीतों के बड़े बड़े संग्रह मिलते हैं। कहीं कहीं तो एक ही स्थान में दो हजार तक गीत देखे गये हैं।" इन गीतों ने असंख्य ऐसे विस्मृत वीरों के यश को अमर कर दिया है जो इतिहास द्वारा उपेक्षित रहे हैं। डिंगल गीतों का अपार ऐतिहासिक मूल्य होते हुए भी इन्हें इतिहास के रूप में कदापि गृहित नहीं किया जा सकता। कारण स्पष्ट है, इतिहास और काव्य का उद्देश्य सर्वथा भिन्न होता है। अतः गीतों में कल्पना का भी बहुत हाथ रहता है। डिंगल गीतों के संबंध में स्वर्गीय मेघाणीजी का मत है, "यह सत्य है कि ये गीत इतिहास का विशुद्ध चित्रण नहीं करते थे, किन्तु प्रजा-जीवन की अनेक मार्मिक घटनाओं तथा तत्कालीन परिस्थितियों पर लोक-हृदय की समीक्षा का विवरण इन गीतों में मिल जाता है। इतिहास के शुष्क कंकाल को इन गीतों ने लोकोर्मियों के सजीव रक्तमाँस से आपूरित कर दिया है।" और इसी लिए राजस्थान की सभ्यता, संस्कृति और अतीत को समझने के लिए इन डिंगल गीतों का अध्ययन अनिवार्य है।

डिंगल मुक्तक काव्य में कुछ स्फुट पद 'साख री कविता' (साखी की कविता) के नाम से पुकारे जाते हैं। ये पद किसी घटना विशेष की स्मृति अथवा साखी में लिखे जाते हैं। अधिकांश डिंगल गीत; 'साख री कविता' कह कर पुकारे जा सकते हैं, क्योंकि वे विशेष घटनाओं पर ही आधारित होते हैं।

प्रायः प्रत्येक कुशल राजस्थानी कवि ने इन गीतों को लिखा है।

अतः गीत लेखकों की सूची बनानी भी अति दुष्कर कार्य है। हम यहां कुछ डिंगल गीतों के रचयिताओं के नामों की सूची देरहे हैं।

(१) बारैठ चौहथ (२) आशानन्द (३) सिढायच चौभुजो (४) दुरसा आढ़ा (५) खींवराज (६) किसनाजी आढ़ा (७) पृथ्वीराज (८) करमसी (९) गाडण पसाइत (१०) डूंगरसी (११) खैतसी (१२) हरसूर (१३) वृन्द (१४) ईसरदास (१५) बांकीदास (१६) दूदो (१७) केशवदास (१८) रतनू वीरभांण (१९) धर्मदास (२०) बीठू मेहो (२१) सांकर (२२) तेजसी (२३) आलियो रतनसी (२४) माधोदास (२५) मंछाराम (२६) सांया झूला (२७) कल्याणदास (२८) हरदास (२९) गेपो तूंकारो (३०) लाखो (३१) सांदू कुम्भो (३२) सुरताण (३३) राजसिंह (३४) जोगीदास (३५) उम्मेदराम (३६) हुकमीचन्द आदि आदि। वैसे यह ऊपर स्पष्ट किया ही जाचुका है कि प्रायः सभी डिंगल लेखकों ने गीत लिखे हैं, पर यहां तो कुछ मुख्य २ नाम ही दिये गये हैं।

स्फुट छन्द—

दोहो, सोरठों, कुण्डलियों, कवितां, (छप्पय) झूलणा, झमाल, त्रोटक आदि अनेक प्रकार के छन्दोंमें लिखित असंख्य रचाएं भी हमें उपलब्ध होती हैं। ऐसी रचनाओं के बहुत से संग्रह हमें मिल जाते हैं जिनकी गणना करना बहुत ही कठिन है, फिर भी हम यहां कुछ प्रसिद्ध और उच्चकोटि के सग्रहों की सूची देरहे हैं। [१] छत्रसाल रा दूहा [२] सरोत रा दूहा [३] नागड़ा रा दूहा [४] राजिये रा सोरठा [५] झमाल नखशिख [६] किवलास रा दूहा [७] सोहणी रा दूहा [८] बांकीदास ग्रन्थावली (अधिकांश ग्रन्थ) [९] केहर रा कुंडलियाँ [१०] गजसिंह रा झूलना [११] मयणारा कवित [१२] रामचन्द्र रा दूहा [१३] जैठये रा दूहा [१४] ढोला मारू रा दोहा [१५] सूरसिंह रा त्रोटका [१६] अमरसिंह रा सवैया [१७] रसालू रा दूहा [१८] गंगाजी रा दूहा आदि।

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि अधिकृत तौर पर इस सम्बन्ध में कुछ भी कहना मुश्किल है क्योंकि अभी तक ऐसे अनेकों संग्रह है, जिनका विद्वानों को पता ही नहीं है। अनेक स्थानों पर पड़े ये संग्रह दीमकों के आहार बन रहे हैं। अतः ऊपर दी गई सूची किसी भी दशा में प्रतिनिधि नहीं मानी जा सकती है। यदि गहराई से देखा जाय तो हमें मानना पड़ेगा कि राजस्थान का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता इसी स्फुट साहित्य में है। राजस्थानी जीवन की विविधताओं सांस्कृतिक पहलुओं, उत्सवों, रीतिरिवाजों और विचारधाराओं का जितना सबल, सशक्त और प्रौढ़ चित्रण इन स्फुट संग्रहों में हुआ है, वैसा पूर्णचित्रण अन्यत्र नहीं मिलता। विषय वस्तु की दृष्टि से भी ऐसी रचनाओं का वैविध्य आश्चर्यजनक है। नीति, धर्म, उत्सव, भक्ति, वीर, श्रृङ्गार, हास्य, करुण आदि रसों, नायिका भेद, यश वर्णन, प्रकृति चित्रण, अन्ध विश्वासों, सामाजिक मान्यताओं आदि की दृष्टि से इन रचनाओं में सभी भांति की रचनाएं मिल जाती हैं। ये रचनाएं जहां एक ओर शास्त्रीय परिधि का स्पर्श करती हैं, वहां दूसरी ओर राजस्थानी जनजीवन की मौखिक परम्पराओं को भी अपने में समाहित करके आगे बढ़ती हैं। अतः इस प्रकार की रचनाएं वस्तुवैविध्य, सरल भाषा और सहज भंगिमा के कारण बहुत लोकप्रिय भी हैं। राजस्थानी साहित्य का रसिक पाठक शायद ही कोई ऐसा मिले जिसे कोई स्फुट रचना याद न हो।

इन संग्रहों का नामकरण निम्न प्रकार से किया गया है—

(१) विषय वस्तु की दृष्टि से अथवा नायक के नाम पर जैसे—
ढोलामारू रा दूहा, गंगाजी रा दूहा, ठाकुरजी रा दूहा, भभाल नखशिख, सत्रसाल रा दूहा, कायर बावनी आदि।

(२) लेखक के नाम पर जैसे प्रथीराज रा दूहा, जैठवे रा दूहा, उदैराम रा दूहा, सूरसिंह रा त्रोटका।

(३) कवियों ने अनेक बार अपने किसी प्रिय पात्र-सेवक, सखा

अथवा सम्बन्धी को सम्बोधित करके भी कविता की है और ऐसी स्फुट कविता के संग्रह का नामकरण संबोधित किये जाने वाले व्यक्ति के नाम पर किया गया है यथा 'राजिये रा सोरठा।' कृपाराम नामक कवि ने अपने सेवक राजिये को संबोधित करके कुछ सोरठे कहे थे, उनका संग्रह राजिया रा सोरठा नाम से पुकारा गया।

इसके अतिरिक्त राजस्थानी गद्य के क्षेत्र में भी चारणों-भाटों द्वारा बहुत बड़ी सेवा की गई है, जिस पर आगे चलकर विचार किया जायेगा।

इस प्रकार हमने देखा कि राजस्थानी साहित्य में चारण-भाट शैली में रचित कृतियों की क्या विशेषताएं हैं और उनका क्या महत्व है? वे किस प्रकार राजस्थानी साहित्य के इतिहास में अपना निजी महत्व रखती हैं।

चन्द वरदाई

●●

['पृथ्वीराज रासो' के रचयिता महाकवि चद का जीवन-चरित्र इतिहास की एक उलझी हुई पहेली है । फिर भी युग युगों से चली आती हुई अनुश्रुति के अनुसार चंद राय पिथौरा का अभिन्नमित्र, जन्म-मरण में साथ देने वाला, तलवार का धनी और सरस्वती का वरद पुत्र था ।]

चन्द वरदाई

●●

'सुदृढ़ अनुश्रुति के बावजूद भी अकबर के शासन-काल से प्राचीन कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता; जिसमें पृथ्वीराज रासो के रचयिता के रूप में चंद कवि का उल्लेख हो। पुरातनप्रबंध-संग्रह (लिपिकाल सं० १५२८) के पृथ्वीराज-प्रबंध से अवश्य ही चंद बलद्दिय कृत पृथ्वीराज-सम्बन्धी दो छंदों का पता चलता है, किन्तु इनके आधार पर यह कहना कठिन है कि ये किसी प्रबन्ध-काव्य के अंश हैं। इन प्रबन्धों के रचना-काल का भी ठीक ठीक पता नहीं है सं० १२८० से १५२८ के बीच में ही कभी न कभी इनकी रचना हुई होगी फिर भी इनसे इतना तो निश्चित है कि चन्द बलद्दिय नामक एक कवि अवश्य था। जिसने पृथ्वीराज के विषय में कुछ काव्य-रचना की थी। वह प्रबन्ध-काव्य था या नहीं इसके लिये कोई ठोस प्रमाण भले ही न हो परन्तु चन्द और उसकी पृथ्वीराज-विषयक काव्य रचना असंदिग्ध है।[1] हम यहां उस ऐतिहासिक ऊहा पोह में पड़ना नहीं चाहते जो काफी लम्बे अर्से से पंडितों के वाद-विवाद का कारण बनी हुई है। हम तो एक बात जानते हैं और वह यह कि 'पृथ्वीराज रासो' चाहे जितना भी प्रक्षिप्त और परवर्ती कवियों द्वारा स्फीत क्यों न किया गया हो, एक श्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थ है। जिसने अनेक वीर काव्यों को प्रभावित किया है और राजस्थानी-मनसा में अपना विशेष स्थान बना लिया है। इस काव्य का मूल रचयिता चंद ही था, इसे मानने में कोई हानि नहीं जान पड़ती है।

परस्पर अन्तर्विरोधी बातों से भरे और ऐतिहासिक वास्तविकता से विहीन रासो के सहारे चंद के जीवन को देने की हम चेष्टा नहीं करेंगे, यद्यपि कुछ विद्वान् ऐसा प्रयत्न कर चुके हैं।[2] ऐसा करना भ्रामक होगा। अतः हमें

---

१. नामवरसिंह व हजारी प्रसाद द्विवेदी- संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो

२. डा० विपिन विहारी त्रिवेदी चंद बरदाई और उनका काव्य

चंद के व्यक्तित्व को समझने की चेष्टा करके ही संतोष करना होगा । निस्संदेह कवि काव्य-शास्त्र का पंडित था । और षटभाषा प्रवीण था । अपने पूर्ववर्ती साहित्य से उसका गहरा परिचय था । अपभ्रंश कालीन काव्य-रूढ़ियों और कथानक की विचित्रताओं को कवि समझता था, और उनसे भरपूर लाभ भी उठाया है । अलंकारों का कवि को मोह नहीं है, किन्तु उसने उनका उचित प्रयोग किया है । मेरी मान्यता है कि चन्द में कवि-सुलभ भावुकता और काव्य की कोई कमी नहीं थी । रासो के अनेक स्थलों में हमें जो गहरी क्रियाशीलता, भाव विदग्धता और काव्य नैपुण्य दीख पड़ता है; वह इस बात का द्योतक है, कि कवि अद्भुत प्रतिभा का स्वामी था । स्थान स्थान पर जो घोड़ों के प्रकारों, भोज-पदार्थों की दीर्घ सूचियों और सामन्तों की लम्बी फहरिस्तें काव्य-प्रवाह में भयंकर बाधा पैदा करती हैं, किन्तु कहा नहीं जा सकता कि वे मूल कवि की रचना हैं अथवा बाद में मिलाये हुये अंश हैं, ऐसी स्थिति में चन्द को काव्य के मर्म से अपरिचित होने का फतवा नहीं दिया जा सकता ।

चन्द, छंद शास्त्र में भी निष्णात था । उसने वार्णिक, मात्रिक, संयुक्त सभी प्रकार के छंदों का आश्रय लिया । बहत्तर प्रकार के छंदों में लिखे गये रासो में काव्यगत और वस्तुगत भंगिमा के अनुरूप ही छन्दों का परिवर्तन होता है । वे उसकी कविता में अपने आप विषय के अनुरूप आ उतरते हैं, अपना रूप ग्रहण कर उठते हैं । यह सब बड़ा स्वाभाविक लगता है । चन्द वास्तव में सरस्वती का वरद पुत्र है । छन्दों का सम्राट है । कब और कहां, कैसा छंद उपयुक्त होगा. इसे चन्द से बढ़ कर कौन जानेगा ? छंद परिवर्तन के प्रवाह में काव्य की विचित्र भंगिमा में, पाठक अपने को खो देता है । चन्द ने अनेक ऐसे छंदों का प्रयोग किया है जो कालान्तर में डिंगल गीतों का स्वरूप ग्रहण कर बैठे । भाषा की दृष्टि से भी चंद का अपरिमित अधिकार और सबल अभिव्यक्ति क्षमता दर्शनीय है । ऐसा लगता है कि कवि के सामने शब्द लगातार आते चले जाते हैं और इसी लिये वह बेहद लापरवाह नजर आता है ।

रासो के आधार पर माना जाता है कि चन्द का जन्म लाहौर में हुआ और वह पृथ्वीराज के साथ ही जन्मा और साथ ही मरा। चंद जन्मा भले ही लाहौर में हो, पर बचपन से अन्त तक वह राजस्थान में ही रहा। राजस्थानी ही रहा। रासो की भाषा, वर्णन-शैली, विषय-सामग्री और स्थानीय चित्रण की दृष्टि से चन्द राजस्थानी ही होना चाहिये। राजस्थान के बाहर का तो वह कदापि हो ही नहीं सकता। चंद प्रतिभा-सम्पन्न और प्रत्युत्पन्नमति था। वह संस्कृत नाटकों के विदूषक की भाँति ही राजा का अंतरंग सखा, उसके प्रेम व्यापार का नियोजक, उसके मृगया-आखेट का सहयोगी, उसके दरबार का मुख्य आकर्षण, रणिवास में जा सकने वाला, विश्वासी, विश्वास पात्र और राजा के कूट षड्यंत्रों का सहकारी था। किन्तु वह विदूषक की भांति बुद्धू और पेटू नहीं था। वह बुद्धिमान था, अनेक अवसरों पर राजा उसकी सलाह से ही काम करता था। चंद ने राजा के दरबार में बहुत महत्व का स्थान प्राप्त कर लिया था। उसका व्यक्तित्व बड़ा ही तेजस्वी था। निर्भीक, राष्ट्रवादी, सदा सत्य बोलने वाला, आत्मश्लाघी, सदा सम्मान पाने वाला, प्रभावशाली, वीर, साहसी चतुर, कुशल योद्धा चंद अपने कर्तव्य को सबसे अधिक महत्व देने वाला था,। चाटुकार नहीं था, आवश्यकता पड़ने पर राजा की आलोचना से भी पीछे नहीं हटता था। कठिनतम कर्तव्य उसे सौंपे जाते थे और वह उन्हें सफलता से बजा लाता था। ऐतिहासिक दृष्टि से चाहे सत्य न भी हो, पर कवि चंद जो रासो का निर्माता है, ऐसी ही बहुविध रूचि, तेजस्विता और गांभीर्य का स्वामी होना चाहिये।

शरद ने एक स्थान पर लिखा है, यदि लेखक किसी भी दृष्टि से छोटा हुआ तो वह बड़ी कृति कैसे दे सकता है? महान् कृति के रचयिता में महानता तो होनी ही चाहिये। निस्संदेह चंद महान था। केवल महत कृति के सर्जक के नाते नहीं अपनी सदाशयता और मानवता के नाते भी। रासो के सम्बन्ध में ठीक ही कहा गया है:—

काव्य—समुद्र कवि चंद कृत,
मुकत सम्मपन ग्यान।

राजनीति बोहिय सुफल,

पार उतारन यान ॥

महाकवि चंद द्वारा रचित काव्य समुद्र 'रासो' ज्ञान के अपार मोती-मूंगो से भरा है किंवा वह राजनीति के वात्याचक्र से बचा, सुफल कर (सफलता सहित) पार लगाने वाला जलयान है। अपने विषय वस्तु वैविध्य के कारण वह मानों विश्व कोष सा बन गया है। ग्रियर्सन ने भी उसे यदि वह प्रामाणिक है, तो अपने समय का विस्तृत इतिहास है, कह कर कवि चंद के महत्व को स्वीकार किया है।

रासो में लिखा है कि चंद पृथ्वीराज के गौरी द्वारा गजनी बन्दी रूप में ले जाये जाने पर स्वयं अपने अपूर्ण रासो को योग्य उत्तराधिकारी 'जल्हण' को देकर, गजनी के लिये रवाना हुआ जिसे उसने ही पूरा किया। 'पुस्तक जल्हन हत्थ दे, गजनी चाले नृप काज'। संस्कृत के प्रसिद्ध कथाकार बाणभट्ट के लिये भी यही कहा जाता है कि उन्होंने अपूर्ण कादम्बरी को अपने पुत्र को सौंपा और उनके छोटे पुत्र ने उसे पूरा किया। रासोकार और कादम्बरीकार के जीवन का यह साम्य चिन्त्य है। अस्तु।

पृथ्वीराज रासो के रचयिता चंद का कभी अस्तित्व रहा हो, मान रहा हो, इसमें कोई संदेह नहीं है, कि उसका व्यक्तित्व महान् था। उसने राजस्थानी साहित्य को बहुत प्रभावित किया है। आज भी रासोकार का जीवन इतिहास और बुद्धि को जबरदस्त चुनौती है।

रेवातट समय

[गौरी से युद्ध वर्णन]

भुजंगी

जहाँ उत्तरयौ साहि चिन्हाव मीरं ।
तहां नेज गह्यौ ठठुक्के पुराडीरं ।
करी आनि साहाब सा बंधि गोरी ।
धकें धींग धींगं धकावें सजोरी ।।
दोऊ दीन दीनं कढी वंकि अस्सीं, ।
किधौं मेघ में बीज कोटी निकस्सीं ।
किये सिप्परं कोरता सेल अग्गी ।
किधौं वद्दरं कोर नागिन्न नग्गी ।।
हबक्कै जु मेछं भ्रमंतं जु छुट्टै ।
मनो घेरनी घुम्मि पारेव तुट्टै ।
उर फुट्टि बरछी बरं छब्बि नासी ।
मनो जाल में मीन अद्धी निकासी ।।
लटक्कै जुरंनं उड़ै हंस हल्लै ।
रसं भीजि सूरं चवग्गांन पिल्लै ।
लगे सीस नेजा भ्रमै भेज तथ्यं ।
भषै बाइस भात दीपत्ति सथ्थं ।।
करै मार मारं महाबीर धीरं ।
मये मेघ धारा बरष्षंत तीरं ।
परे पंच पुंडीर सा चंद कढ्यौ ।
तबै साहि गोरीस चिन्हाव चढ्यौ ।।

कवित्त

उत्तरि साहि चिन्हाव, घाय पुंडीर लुथ्थि पर ।
उप्पारयो वर चंद, पंच बंधव सुपथ्थ धर ॥
दिष्षि दूत वर चरित, पास आयो चहु आनं ।
[तौ]उप्पर गोरी नरिंद, हास बढ्ढी सुरतानं ॥
वर मीर धीर मारूफ ढुरि, पंच अनी एकठ जुरी ।
सुर पंच कोस लाहौर तें, मेच्छ मिला नह सो करी ॥

दूहा

बीर रोस बर बैर वर, झकि लग्गौ असमान ।
तौ नन्दन सोमेस को, फिरि बंधौ सुरतान ॥

दूहा

चंद्र व्यूह नृप बंधि दल, धनि प्रथिराज नरिंद ।
साहि बंधि सुरतान सौं, सेना त्रिन विधि कंद ॥

कवित्त

वर मंगल पंचमी दिन सु दीनौ प्रिथिराज ।
राह केतु जप दीन दुष्ट टारे सुभ काजं ॥
अष्ट चक्र जोगिनी भोग भरनी सुधिरारी ।
गुरु पंचमि रवि पंचम अष्ट मंगल नृप भारी ।
कै इन्द्र बुद्ध भारथ्थ भल कर त्रिशूल चक्रा बलिय ।
सुभ धरिय राजवर लीन वर चढ्यौ उदैकूरह बलिय ॥

दूहा

सो रचि उद्ध अबद्ध अध, उग्गि महंवधि मद ।
बर निषेध नृप बंदयो, कोन भाइ कवि चंद ॥

कवित्त

(यों) प्रात सूर बंछई,(ज्यौं) चक्क चक्किय रवि बंछै ।
(यों) प्राप्त सूर बंछई, (ज्यौं) सुरह बुद्धि बल सो इ छै ॥
(यों) प्रात सूर बंछई, (ज्यौं) प्रातवर बंछि वियोगी ।
(यों) प्रातसूर बंछई, (ज्यौं) सु बंछै बर रोगो ॥
बंछयौ प्रात ज्यों त्यों उनन (ज्यौं) बछै रंक करन्न बर ।
(यों) बंछयौ प्रात प्रथिराज ने, (ज्यौं) सती सत्त वंछैति उर ॥

छंद दंडमाली

भय प्रात रत्तिय जु रत्त दीसय, चंद मंदय चंदयौ ।
भर तमम तामस सूर बर भरि, रास तामस छंदयौ ॥
बर बज्जियं नीसांन धुनि घन, बीर बरनिअ कूरयं ।
धर भरकि धाइर करषि काइर, रम्मि सूरस कूरयं ॥
गज घंट घनकिय रुद्र मनकिय, षनकि संकर उद्दयौ ।
रननंकि भेरिय कन्ह हेरिय दतिदांन धनंदयौ ॥
सुनि वीर सद्दइ सबद पद्धइ, सद्द सद्दइ छंडयौ ।
तिह ठौर अदभुत होत न्रप दल, बंधि दुज्जन षंडयौ ॥
सन्नाह सूरज सज्जि घाटं, चद्द ओपम राजई ।
[कै] मुकुर में प्रतिब्यंब राजय,[कै] सत्त घन ससि साजई ॥
बर फल्लि बंबर टोप ओपत, रीस सीम्मत आइबे ।
नष्षित्र हस्त कि भांन चंपक, कमल सूरहि साइबे ॥

बर बीर धार जुगिंद पंतिय, कब्बि ओपम पाइयं ।
तजि मोहमाया छेह कल बर, धार तिथ्थह धाइयं ॥

संसार संकर बंधि गज जिमि, अप्प बधन हथ्थयं ।
उनमत्त गज जिमि नंषि दीनी, मोहमाया सथ्थयं ॥

सो प्रबल महजुगबधि जोगी, हुनि आरम देवयो ।
सामंत धनि जिति षित्ति कीनी, पत्त तरू जिमि भेवयो ॥

दूहा

क्रमं गाह इक मुगति की, क्यों करिजै बाषांन ।
मन अनंष सामंत नै, (ज्यौं) कच करवति पाषांन ॥

बाई बीष धूंधर परिय, बद्दर छाये भांन ।
कुन घर मंगल बज्जहीं, कै चढ़ि मंगल आंन ॥

दिष्ट देषि सुरतांन दल, लोहा चक्कत बांन ।
षहक फेरि उड्गन चले, निसि आगम फिरि जांन ॥

धजा बाइ बंकुर उड़ति, छबि कविंद इह आइ ।
उड्गन चंद निरिंदविय, लगी मनोअइ पाइ ॥

सेसनि मंकहि बज्जतहि, बाजे कुहक सुरंग ।
मेटै सद्द निसांन के, सुने न श्रवनति अङ्ग ॥

अनी दोउ घनघोर ज्यौं, धाइ मिलैं कर घाट ।
चित्रङ्ग रावर बिना, करै कोन दहवाट ॥

कवित्त

पवन रूप परचंड, घालिअसु असि बर भारै ।
मार मार सुर बज्जि, पत्ततरू अरि सिर पारै ॥
फहकि सद्द फोफरा, हुड्डु कंफर उष्षारै ।
कटि भसुण्ड परि मुंड, भिंड कंटक उप्पारै ॥
बज्ज्यो विषम्म मेवार पति, रज उड़ाइ सुरतांन दल ।
समरथ्थ समर मनमथ मिलिय, अनीमुष्य पिष्यौ सबल ॥
रावर उप्पर धाइ, परयो पाँवार जैत षिभि ।
तिहि उप्पर चामंड, करयो हुस्सेनषांन सजि ॥
धक्काई धक्काइ, दोउ हरवल बल मंज्फै ।
पच्छ सेन आहुट्ठि, अनी बंधी आलुज्फै ॥
गजराज बिय सु सुरतांन दह, चतुरँग बर बीर बर ।
धनि धार धार धारह धनी, बर भट्टी उप्पारि करि ॥
छत्र मुजीक सु अप्पि, जैत दीनो सिर छत्रं ।
चन्द्रव्यूह अङ्कुरिय, राजु हुअ तहां इकत्रं ॥
एक अग्र हुस्सैन, बीय अग्रह पुण्डीरं ।
मद्धि भाग रघुवंस, राम उभ्भौ बर बीरं ॥
सांषलौ सूर सारंगदे, उररि षांन गोरीय मुष ।
हथनारि जोर जंबूर घन, दुहूँ बाँह उभ्भेति रूष ॥

छट्टि अद्ध बर घटिय, चढ्यौ मध्यांन भांन सिर ।
सूर कंध बर कट्टि, मिले काइर कुरंग बर ॥

धरी उद्ध बर अद्ध, लोह सों लोहजु रूक्के ।
मन अग्गै अरि मिले, चित्त में कंक्र षरक्के ॥

पुंडीर भीर भंजर भिरन, लरन तिरछौ लग्गयो ।
नव बधू जेम संका सुबर, उदोजानि जिमि भग्गयौ ॥

छंद भुजंगी

मिले चाइ चहु आंन सा चाँपि गोरी ।
स्त्रयं पंच कोरी निसांनं अहोरी ॥
बजे आवधं संभरे उद्ध कोसं ।
तिनं अग्ग नीसांन मिलि अद्धकोसं ॥
बरं अंबरं चौर माहीति साई ।
हले छत्रपीतं वले मार धाई ॥
बुलै सूर हक्के हहक्के पचारं ।
षले बथ्थ दोऊ षगं जा अपारं ॥
उतंमंग तुट्टै परै आँन धारी ।
मनो दंड सुक्की अगी बाइ बारी ॥
नचै कंध बंधं हकैं सीस भारी ।
तहाँ जोगमाया जकीसी त्रिचारी ॥
बढ़ी सांग लग्गी बजी धार धारं ।
तहां सेन दूनूं करै मार मारं ॥

नचै रंग भैरूं गहै ताल वीरं ।
सुरँग अच्छरी बंधि नारद तीरं ॥
इसी जुद्ध बद्धं उबद्धे उ भानं ।
भिरै गोरियं सेन अरु चाहुआनं ॥
करै कुंडली तेग वग्गी प्रमानं ।
मनो मंडली रासतं कन्ह ठानं ॥
फुटी आवधं माहि सामंत सूरं ।
बजै गोर ओरं मनो बज्ज भूरं ॥
लगै धार धारं तिनै धरह तुट्टै ।
दुहूँ कुम्भ भग्गै करक्कं अहुट्टै ॥
फुटी श्रोन भोमं अपी बिंब राजं ।
मनो मेघ बुट्ठे प्रथम्मी समाजं ॥
पराक्रम्म राजं प्रथीपति रूठ्यौ ।
रनं रूंधि गोरी समं जंग जुठ्यौ ॥

दूहा

तेज छुट्टि गौरी सुबर, दिय धीरज तत्तार ।
मो उब्भै सुरतान को, भीर परी इनबार ॥

छंद-मोतीदाम

रतिराज रू जोवन राजत जोर ।
चँप्यौ ससिरं उर सैसव कोर ॥
उन मद्धि मधि मधुरी धुनि होय ।
तिनं उपमा बरनी कवि कोय ॥

सुनी बर आगम जुब्बन बैन ।
नच्यौ कबहुँ न सुउद्दिम मैन ॥
कबहुँ दुरि कंन्न पुच्छत नैन ।
कहौ किन अब्ब दुरी दुरी गैन ॥
ससि रोरन सैसव दुन्दुभि बज्जि ।
उभै रतिराज स जोबन सज्जि ॥
कहि बर श्रोन सुरंगिय रज्जि ।
चँपे नर दोउ बनं बन भज्जि ॥
इय मीन नलीन भये अति रज्जि ।
भय विभ्रम भारु परीवहि नज्जि ॥
सुर मारुत फौज प्रथम्म चलाइ ।
गति लज्जि सकुच्छि कछै मिलि आइ ॥
दहि सीतम भूप नकंदहि जीव ।
प्रगटै उर तुच्छ सोऊ उर भीव ॥
बिन पल्लव कोर हिता रहि संभ ।
गहना बिन बाल बिराजत अंभ ॥
कलि कंठन कंठ सज्यौ अलि पंष ।
नउड्डिय अंग नवेलिय अंष ॥
सजी चतुरंग सज्यो बनराइ ।
बजी इन उप्पर सैसव जाइ ॥
कवि मत्तिय जूह तिनं बहु घोर ।
बनंत वैसंधय चंद कठोर ॥

असाइत

●●

[अरस्तु ने इतिहास से काव्य को अधिक महत्व देते हुए कहा था—'कविता सार्वदेशिक व शाश्वत के सम्बन्ध में प्रकाश डालती है, वहाँ इतिहास केवल सीमित और विशेष के सम्बन्ध में है'। इस कसौटी पर असाइत की कविता खरी उतरती हैं]।

असाइत

●●

सरस्वती के अनन्य साधक असाइत उसके प्रतिभा-पुत्र थे। वे एक कवि थे, उससे बढ़कर संगीतज्ञ थे, उससे भी बढ़ कर अभिनेता व कथा-वाचक थे, किन्तु सबसे बढ़ कर वे मानव थे, महा मानव थे। उनका समूचा जीवन तप और विद्रोह का जीवन था। उनका कोई स्वरूप कम महत्व का न था और आज युगों के व्यवधान के बाद भी उनकी प्रभा में कोई अन्तर नही पड़ा है।

सिद्धपुर (गुजरात)[1] के एक मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार में उनका जन्म हुआ। उनके पिता राजाराम ठाकुर, यजुर्वेदी भारद्वाज गौत्र के औदिच्य ब्राह्मण थे।[2] असाइत जब नवयुवक ही थे, तभी इनकी ख्याति अपनी काव्य प्रतिभा, मधुर व मोहक संगीत, हास्यप्रियता. अभिनय कुशलता और कथा वाचकता के लिए पास पड़ौस में फैल गई थी। प्रकृति प्रदत्त अपने इन गुणों के कारण अनेक जन इन्हें गुरु रूप में श्रद्धा करने लग गये थे। ऐसे व्यक्तियों में ऊँझा निवासी पाटीदार (किसानों में एक जाति) हेमला भी था। हेमला के गङ्गा नामक एक अति सुन्दर कन्या थी। इस कन्या की सुन्दरता की ख्याति सुनकर एक मुस्लिम सरदार ने सदल बल ऊँझा में आकर डेरा जमाया। उसने अपने सैनिकों के द्वारा बलपूर्वक गङ्गा को पकड़ मँगवाया। असाइत को इस घटना की जब सूचना मिली तो वे तुरन्त ही सरदार की छावनी में पहुँचे। अपने संगीत

---

१. तब का गुजरात का यह प्रदेश भाषा व संस्कृति की दृष्टि से बृहत्तर राजस्थान का भाग माना जा सकता है। भाषा की दृष्टि से पन्द्रहवीं शताब्दि में इस समूचे प्रदेश में एक ही भाषा का प्रचार था, जिसे डा० तेस्सीतोरी ने 'पुरानी पश्चिमी राजस्थानी, क. मा. मुंशी ने गुर्जर अपभ्रंश और उमाशङ्कर जोशी ने 'मारूगुर्जर' कह कर पुकारा है। —लेखक

२. के. का. शास्त्री –कवि रित-भाग १ पृष्ट ३.

के रस में डुबोकर उन्होंने सरदार को अति प्रसन्न कर दिया। सरदार द्वारा पुरस्कार देने की बात चलाने पर उन्होंने गङ्गा की मुक्ति की याचना की और कहा कि यह मेरी अपनी बेटी है और आपके सिपाही उसे बलपूर्वक उठा लाये हैं। सरदार बड़े असमंजस में पड़ा। उसकी जानकारी के अनुसार गङ्गा किसान कन्या थी और यह ब्राह्मण उसे अपनी बेटी बता रहा है। उसने जांच का तरीका निकाला। उसने दोनों को शामिल भोजन करने को कहा जिससे कि उसे उनके पिता-पुत्री के सम्बन्ध का भरोसा हो जाय। असाइत ने किसान कन्या के शामिल भोजन करके अपनी जाति को डुबोया पर मानवता को बचा लिया, सिद्धपुर के अपने परिजनों व स्वजातियों के आक्रोष व घृणा, तिरस्कार और लांछना का कष्ट उठाया पर एक बालिका के सम्मान को बचा सारे किसानों का श्रद्धा-भाजन बना। पन्द्रहवीं शती में इस भयंकर विद्रोह और अधार्मिक कृत्य को गंभीरतम अपराध के रूप में गिनना सहज स्वाभाविक था। उच्च द्विज वंश में जन्म लेकर खान-पान की रूढ़ियों की शृङ्खलाओं को तोड़ दे, यह कम अपराध नहीं और भयंकर अपराध की सजा भी भयंकर हो सकती है। चाहे असाइत ने यह घोर कर्म किसी नारी की लज्जा बचाने के लिए निस्वार्थ भाव से ही क्यों न किया हो, चाहे यह मानवता का उज्वल आदर्श ही क्यों न हो, पर असाइत को प्रायश्चित्त स्वरूप अपनी जन्मभूमि सिद्धपुर को सदा सर्वदा के लिए छोड़ देनी पड़ी। अपने सजातियों और सम्बन्धियों द्वारा किये गये अन्याय को वह सह नहीं सका। और ऊँझा जाकर ही बसना पड़ा। ऊँझा निवासियों ने—विशेषतः कृषक जनों ने कवि असाइत को उनकी महानता के अनुरूप ही सम्मान दिया।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है; असाइत एक उदार व्यक्ति थे। उन दिनों जैन व ब्राह्मण दोनों वर्गों में पटती नहीं थी। वे काफी अंश में एक दूसरे के प्रति असहिष्णु भी थे। यद्यपि धर्म के नाम पर उग्रता नहीं थी, पर सहनशीलता का अभाव था। असाइत ने अपनी कृति हंसावली द्वारा इतना

भाव संतुलन दिखाया कि उसे लोग[3] जैन कवि मानने लग गये। यह कृति हंसावली—अथवा हंस वच्छ चौपाई—एक प्रेम काव्य है। यह जैन व अजैन दोनों प्रकार के सहृदयों या विद्वानों द्वारा समादृत हुई है। मति सुन्दर नाम के एक जैन साधु ने इस कथा की मानस-प्रक्षालन क्षमता व मनमोहकता से प्रभावित होकर 'हंसाउली पूर्व भव चरित' नाम से सम्वत् १६२१ में एक काव्य ग्रन्थ रचा। जिसमें हंसावली के पूर्व जन्म की कथा कही है। यह उनकी लोकप्रियता का एक उत्कृष्ट प्रमाण है। अपनी कृति में पहिठाण नगर का वर्णन करते हुए कवि इसी सम्यक् मनोवृत्ति का परिचय देता है, जिसमें वेदाभ्यासी ब्राह्मण व जैन मतावलम्बी श्रावकों का समान वर्णन करता है यथा—

ब्राह्मण वेद शास्त्र अभ्यसि, चारि वरण वरणांतरि वसि।
वे सहस जिहां जिन थापिया, बीस सहस माहिं व्यवहारिया।

असाइत ने 'हंसाउली काव्य' की रचना संवत् १४२७ में की थी, यह अन्त की निम्न पंक्तियों से ज्ञात होता है—

संवत् १४चऊ चन्द्र मुनि शंष वछहं सवर चरित असंष।
बावन वीर कथा रस लीउ एह पवाड़ु असाईत कहिउ॥

इस दृष्टि से हंसावली हमारे बहुत पुराने प्रेम काव्यों में से है। हिन्दी के भक्ति-कालीन काव्य ग्रन्थों यथा पद्मावत रामचरित मानस के चौपाई-दोहा पद्धति की परम्परा का अंकुर हमें अपभ्रंश-साहित्य में मिलता है। हंसाउली इस शृङ्खला की बीच की कड़ी है। छन्द मुख्यतः चौपाई है—बीच २ में दोहों का प्रयोग है। तीन विभिन्न स्थलों पर विरह-गीतों की रचना करके कवि ने अपनी विदग्धता व भावुकता का परिचय दिया है। ये विरह-गीत तीन विभिन्न रागों में रचे गये हैं। उदाहरण के लिए यह गीत—

---

३ जैन गुर्जर कविओं, भाग १, पृष्ठ ४६

राग रामगिरी

राजकुंअरि हियडु हणिः पूरब प्रेम प्रसंग।
आगि दावानल दही, वली दुख दाभि अङ्ग।

पोपट पंखीआ, नवल नेह नरनाथ।
जिम वन भूलि हरणली, तिम हूँ सामी साथ।

किलकिलती वन विचरती, वेली वर वीसास।
सीध सामी साहस कीउ, हूँ एकली निरास।

यणि असाइतः भव अंतरि, समरि सामणि कंत।
हंसउली धरती ढ़ली, प्रीउ प्रीउ मुखि भणंत।

इस प्रेम-काव्य की भाषा सोलहवीं शताब्दि के प्रारम्भ की तो निश्चित रूप से मानी जा सकती है, यद्यपि कहीं कहीं भाषा में कुछ अपेक्षाकृत नवीनता का बोध होता है। जहां तक विषय-वस्तु का प्रश्न है—असाइत को नवीनता का श्रेय नहीं दिया जा सकता। 'हंसाउली' १४२७ विक्रमाब्द में हुई किन्तु उससे भी पहले संवत १४११ में एक जैन कवि विनय भद्र ने 'हंसवच्छ' चोपाई लिखी है। इसका अर्थ यह हुआ कि हंसवच्छ की प्रेम कथा लोक प्रचलित थी, उसे ही असाइत ने विकसित किया है। संसार के चिर नवीन और चिर पुरातन प्रश्न प्रेम को लेकर चलने वाला यह कथा काव्य अपने में लोक-कथाओं के अनेकों तत्व सन्निहित किये है। इस तथ्य से मेरी मान्यता की पुष्टि ही होती है। हंसाउली का पूरा नाम 'हंस वच्छ चरित पवाड़ा' है और यह ४४० छंद में समाप्त हुआ है। समूचा काव्य-चार खंडों में विभाजित है। कविता में चमत्कार की प्रधानता नहीं है, अलंकारों की चमक दमक नहीं है किन्तु गंभीर रसमयी धारा का प्रवाह है। यथा स्थान कवि ने शृंगार, अद्भुत, हास्य व करुण रसों की सफल अभिव्यंजना की है।

यह काव्य पाठ्य से अधिक गेय है। असाइत स्वयं अच्छे गायक थे और इस गेय प्रेम-काव्य को सुना कर कितना मादक बना सकते थे, इसकी कल्पना करना भी कठिन है, किन्तु सस्वर कविता पाठ करने वाले कवियों को कवि सम्मेलनों में मिलने वाली सफलता व लोकप्रियता की उन्हें कभी कमी न रही होगी। यह तो आसानी से समझा जा सकता है। क्योंकि वे 'कला-कार' और 'गलागार' दोनों थे। गेय पदों के अन्त में कवि ने अपनी छाप दी है और जैन कवियों की शैली व परम्परा को बहुत हद तक आत्मसात् करके ही अपनी कृति को सर्जा है। भारतीय मनसा में प्रेम के अमरत्व व जन्म जन्मान्तरों से भी संयोग की संभावना की भावना नानाविध व्याप्त है। विभिन्न योनियों में जन्म लेने पर भी सच्चे प्रेमी एक दूसरे के प्रति अपने अनुराग में दृढ़ रहते हैं। यह लोक-विश्वास ही इस काव्य-कथा का मेरूदण्ड है।

कवि के रूप में चाहे हम असाइत को प्रथम श्रेणी में न गिने, किन्तु मानवता के क्षेत्र में उनका स्थान अग्रिम है। प्राचीन कृति के रूप में और सरस काव्य के रूप में 'हंसाउली' का अपना महत्व है, इसे मानना ही होगा।

★

हंसाउली

सकति संभूत्र मकति संभूअ पत्त परमेसु ।
सिद्ध बुद्धि वर विघनहर करू कवित मनि धरूं आदिहि ।
कासमीर मुषमंडणी हंसगमणि सरसति सामिणि ।
तास प्रसादि वेदव्यास वालमीक रषि इम एहनु उपदेस ।
तास प्रसादि असाईत भणि वीर कथा वरण व्योस ॥१॥

अमरावती समाणं पेपि प्रमाणं पहूअवपाणं ।
पुर पाटण पहिठाणं पहिठाणं वीर बावनया ॥२॥

चउपई

यादवतणु वंश वरणवुं । बचन रस नाटिक अभिनवु ।
एता उदभून गीत कवीत । भणता गणता पसरि चीत ॥३॥
मलिवाहन सुत उत्तम ठाइ राजकरि तिहां नरवाहन राइ ।
बावन वीर माहि भूभःर–लहुडु भाई शकति कुमार ॥४॥
शखिर बद्ध दस सहस प्रासाद कनक कलस धज नरवि नाद ।
गोदावरीइ निरमलनीर पुर पहिठाण वसि तिहां तीर ॥५॥
ब्राह्मण वेद शास्त्र अभ्यसि चारि वरण वरणांतरि वसि ।
त्रि सहस जिहां जिन थापीआ वीस सहस माहि व्यवहारीया ॥६॥
उत्तम धवलहर पोलि पगार वास नगर नव जोअण बार ।
चउरासी चउहट्टे वुहरीइ राइचा उसव वंदिणि दीइ ॥७॥
सांथ जाय जूवटा घणा कलहट कोलाहल तेह तणां ।
एक चउपलीया कुडी घसि वेसहरि मदिर वी स.सि ॥८॥

रूडी रूपि राजकूअरी यिणिसि साठि अंतेउरी ।
बहू बाराइत वानि घणि दासी त्रीस सहस तेहतणी ॥६॥
राजरूधि नवनिधि नरमली चतुरंगसेन छत्री सिकुली ।
बावनवीर सदा गहि गहि पणि त्रिपनमु न वि सासहि ॥१०॥
तेणि पुरि पाटणि नयरनरिंद एक वार पुढ़िउ निरू नीद ।
थयुं प्रभात सुपनंतर होइ ऊगिउ सूर न जागि सोइ ॥११॥
गियु कणयापुर पाटणि ठाइ परणि कुंयरि कनक भ्रम राइ ।
हंसाउली कर ग्रहीउ जसि सपन प्रेम मनि लागु जसि ॥१२॥
नरवि पुढ़िउ परवसि चीत कोइ न जाणि मन भयभीत ।
राजद्वारि मिल्या जे मानिराइ ऊठाडु जई प्रधानि ॥१३॥
ऊठिउ राजा थयु गुण दोस कप्पीउ काल मन वसीउ रोस ।
भणि काज वणास्युं मुझ धरी छुरी करी मारू तुझ ॥१४॥
भणि मन केसरि सामि हू साध देव म मारिस विण अपराध ।
राजा करि सो निसि होई विण अपराध न मारि कोइ ॥१५॥

\+ \+ \+

त्रणि प्रछन गति चालीया विषम वाट वन लंघी गया ।
किहा विप्र कहा योगी थाइ देशांतरी तणी मलि जाइ ॥३०॥

एक वसइ एक उद्वस घाट सावज चोर चरउ ते वाट ।
अनेक उपाय अनोपम कीयां त्रिह् मासे कणयापुर गया ॥३१॥

कणयापुर पाटण घणदेस कनकभ्रम कहीइ नगर नरेस ।
गढ़ मढ मंदिर पोलि पगार वास नगर नव जोअण वार ॥३२॥

दूहा

सरोवर पालि उतरया वाडी करया विश्राम ।
ततक्षणि चाल्यु कापडी राजन करिय प्रणाम ॥३३॥

चउपाई

बिहू जण सरसु नगर नरेस कणयापुरि कीधु परवेस ।
राजलक्षण जे जाणइ विवेक साहमी आवी मालणि एक ॥३४॥

+ + +

विवध फूल फल निव नैवेद्य वीणा वश गाइ गुणभेद ।
सोइ जि पखरी पंचसि नारि दीठी कुंयरि मंत्रि मढि बारि ॥५२॥
यथु देवी तव बुद्धि निधान हाकि मुनि केमर प्रधान ।
नरहत्या ति ।कधी घणी मुझ मढ़ि म रहेसि पापिणी ॥५३॥
हंसाउली शबद जव सुणी जाण्यु देवि कुपी मुझ भणी ।
कर जोडीनि ऊभी रहि गतपूरव भव वीतक कहि ॥५४॥
देवि अवधारू मुझ वीनती पेलि भविं हुँ वंषणी हती ।
ईडा मेहला सेवन कीउ दव बलतउ तेणी वनि आवीउ ॥५५॥
मझ भरतारि साहस नवि कीउ अपति मेहलीनि ऊडी गयु ।
जाती समरणि सभारू सोइ मारू पुरुष न मेलु कोई ॥५६॥

+ + +

द्वितीय खंड

मास दिवस मनि निस्यु धरू सयंवर तणी सझाइ करू ।
कुयरितणा चरण प्रणमेवि चाल्यु चित्रक संबल लेवि ॥६३॥

चतुर्थ खंड

राज भणि सेठि मनि धरू विवहारीआ कहितें करू ।
तलारि चोर चलाव्यु जसि सेरीइ श्रावक मिलीया तिसि ।
आपणया माहि मचका करि महेसरी भलु छि सेठि ।
धोती कषाइ पहिरणि सरि सनान सह तापस भणि ॥२८॥
एक भणी मिथ्याती तजु आठ कर्म काई उपारजु ।
जोउ तलारतणी मनहोर आइ उपाइ मेलावु चोर ॥२९॥
कुंयरि वषारि दीधि देठि बिठउ दीठउ सूमण सेठि ।
बछराज वषारि गयु तत्र सेठ साहमु ऊठिउ ॥५॥
ते वनि मि मेहलउ भाई लेइ चंदन चालिसु तिणि ठाइ ।
देई दाघ आवु जेतलि तम थापणि आपु तेतलि ॥८॥

विवहारीया बीर वीसमु दीठूं रतन सेठि मनि हस्यु ॥९॥

ते द्रव्य आप्युं तेणि वार वहित्रा सरि दीधु भार ॥१०॥
कुमरपूठि वहित्रा थऊ साथ गाऊ सोवन गिरि गयु ।
जइ जोऊं सरोवर पालि नहीं शत्र ते वडनी डालि ॥११॥

कुंयर चरण विमासि हइ इहा उपद्रव साविजनुं होइ ॥१२॥

ते चंदन सुपिउं ते धणी अचरिज वात कही आपणी ।
आपु थापणि जे तुम्ह हाथी हवि चालसुं अवर कहि साथि ॥१५॥
आघा पाछा पगला भरि थापणि मोसु करवा करि ।
दीठा बार रतन बे तुरी लोभि सेठितणी बुद्धि फरी ॥१६॥

धन भणीइ अनरथनूं मूल धन अदेषु माथा शूल ।
धन कारणि एक कूडा करि धन बदि सगा सहोदर मरि ॥१७॥

कुणबा रोस धन कारणि पडि धन कारणि एक वाहणि चडि ।
धन कारणि हुइ कृपण कठोर धन कारणिइ एक पइसइ चोर ॥१८॥

धन कारणि एक नीद्र न करि धन कारणि राजा रणि मरि ।
धन कारणि रानि एक रलि धन वदि हाथे छूदा बलि ॥१६॥

धन कारणि एक पाडि वाट मारि अबला ब्रंभण भाट ।
भणि चडउ अस्व पूठि पल्हाण बार रतन तम आपु आणि ॥२०॥

कुंपर तुरी छोडेवा गयु एक चड्ड एक वागि लीउ ।
अश्व ऊपरि जव दीठउ सेठि बूब पडावी सूमण सेठि ॥२१॥

पंचम खंड

चुपई

सहित सुषासण आव्या तुरी ग्यु लगुनि सहु संचरी ।
भणि हंस अपराधो धरू सेठि सकुटंब सूली धरिउ ॥६॥

भणि वच्छ करमि दीजि दोस पिता मंत्रेई मधरसि रोस ।
लषिउ विधाता ते दिन ताणिउ ऊपरि त्रणा कुहाड्ड कस्युं ॥१०॥

पुनरपि वछराज इम भणि निहालि हरिचंद चरित तइ सुणि ।
राम युधिष्टर चाल्या धर्म हंसराज नवि छूटा कर्म ॥११॥

ततषिण हंस विमासि हीइ वीर वचन केणी परिलोपीइ ।
राजरीति चित चाहि रंग मेहल्यु सेठि लेई सप्तांग ॥११॥

कीधु बहू आलोच आवासि सुपिउ राज प्रधानह पासि ।
सकल सेन सहित चालीया पुर पहइठाण नगर ते गया ॥१३

भेट्या मात तात परिवार तलीया तोरण वनरवालि ।
छबि सेसि भरी वछ काजि ॥१४॥

\+ + +

भणता दोष दरिद्र तनि टलि भणि असाईत अफला फलि ।
भणि भणावि नित गुणि नवनधि आवि अंगणि ॥१७॥

संवत् १४ चऊ चंद्रमुनि शंष वछ हंसवर चरित असंष ।
बावन वीर कथा रस लीउ एह पवाडु असाईत कहिउ ॥१८॥

गुणावन्त

●●

[वसन्त-विलास का हृदय-राग, उसका माधुर्य, उसका पद-लालित्य सब कुछ मनोहर है············वसन्त-विलास में पद-पद पर जीवन का उल्लास मुखर हो उठा है ।

—दीवान बहादुर के० ह० ध्रुव]

गुणवन्त

●●

'वसन्त-विलास चमचमाती हुई चांदनी के समान काव्य है......... कवि की वाणी अत्यन्त मधुर और भाव भरी है। उज्वल शब्दालंकार और अर्थालंकार उसके माधुर्य और रस का पोषण करते हैं। शैली संस्कारी है... ......इस सुन्दर काव्य में तरुण स्त्री-पुरुष आलम्बन हैं। उनकी स्थायी रति ऋतुराज के उद्दीपन से भभक उठती है। फाल्गुन माह की क्रीड़ा इसमें वर्णित है, इसीसे प्राचीन गुजराती। (राजस्थानी) में इसे 'फागु' नाम से पहिचाना जाता है'[1] इस उल्लासमय कविता के रचयिता के बारे में हम कुछ भी नहीं जानते। गुजराती के विद्वान भी ध्रुव के अनुसार इस शृङ्गारी काव्य का रचयिता अन्धकार की चादर ओढ़े अगोचर रहा है। अतः इसकी जाति के सम्बन्ध में कुछ भी कल्पना करना जोखम से भरा काम है, तथापि वसंत-विलास में पद-पद पर जीवन का उल्हास उभर रहा है, उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि कवि संसार से दुखी, विरागी नहीं किन्तु विश्व के वैभव में पूर्ण रस लेने वाला सहृदय पुरुष होगा।......अतः कवि जैनेत्तर होगा।[2] । 'वसन्त-विलास' के आधार पर निर्मित चित्रमाला का अध्ययन करते हुए भी मेहता ने कवि को अजैन ही माना है क्योंकि सभी चित्रों में वैष्णव तिलक दीख पड़ता है[3]। किन्तु अन्य विद्वान उसे जैन मानते हैं। साराभाई नवाब के अनुसार जैन विद्वान् नतर्षि ने इसे लिखा। लेखक के नाम के सम्बन्ध में कांतिलाल व्यास ने 'मुंज' अथवा 'गुणवन्त' नाम की संभावना सुझाई है।

१ के० ह० ध्रुव—हाजी महम्मद स्मारक ग्रंथ—पृष्ट १८७

२ के० ह० ध्रुव—प्राचीन गुर्जर काव्य-भूमिका— „ १४-१५

३ N. C. Mehta–Studies in Indian painting.

के. का. शास्त्री 'कविचरित' में इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नहीं कह पाये हैं।

'राजस्थान पुरातत्व मन्दिर' के लिए म. चि. मोदी ने इस काव्य को लघु और बृहद् दोनों रुपान्तरों के साथ सम्पादित किया है, किन्तु इसके कवि के सम्बन्ध में विशेष जानकारी नहीं दी है। मेरी धारणा है कि कवि जैनेत्तर होना चाहिये और कविता की अन्तिम पंक्ति के आधार पर उसका नाम 'गुणवन्त' कल्पित किया। यथा—

धनु धनु ते गुणवन्त, वसन्त विलासु जिगांइ॑।

वैसे इस पंक्ति का सीधा सादा अर्थ होगा - वह गुणवान व्यक्ति धन्य है जो 'वसन्त-विलास' गाता है। किन्तु 'गुणवन्त' का सांकेतिक अर्थ कवि के नाम के रूप में ग्रहित किया जा सकता है। यह कोई नवीन बात नहीं है। बिहारी का एक प्रसिद्ध दोहा है, जिसमें उन्होंने 'बिहारीलाल' का इसी प्रकार का श्लेषमय सांकेतिक प्रयोग किया है—यथा

सीस मुकुट कटि काछनि, कर मुरली उर माल।
इहि बानिक मों मन बसौ, सदा बिहारीलाल ॥

स्थानाभाव से हम ऐसे उदाहरण देने का लोभ संवरण कर रहे हैं। इस दृष्टिकोण से 'वसन्त-विलास' को गुणवन्त कहना अनुचित नहीं होगा। हमारा कवि 'गुणवन्त' तो है ही, और वैसे बाल की खाल निकालने से लाभ भी क्या ?

'वसन्त-विलास' एक शृङ्गार-रस का काव्य है। वसन्त-ऋतु की मादकता से व्याकुल एक युवती—नायिका अपने प्रिय के वियोग में मग्न है। शुभ शकुन होरहे हैं। अब प्रियतम आने वाले ही हैं और सचमुच प्रियतम आगये। अन्धे को मानों आंखें मिली। वसन्त की मादकता, भ्रमरों की गुंजार, आम्र-मंजरी की भीनी भीनी महक, नये किसलयों की अठखेलियां तरुणियां के प्रस्वेद

बिन्दुओं को सुखाने वाली शीतलता, पिक की तान सभी मिल गजब ढाते हैं। नायक और नायिका आल्हाद के अथाह-सागर में डूबने उतराने लगते हैं और कवि की काव्य-कुशलता के कारण पाठक भी अलौकिक रस-सागर में निमग्न होजाते हैं। रचना से जान पड़ता है कि कवि को संस्कृत-साहित्य व प्राकृत-भाषा का अच्छा ज्ञान था। वसन्त-विलास के अनेक पदों में संस्कृत के नैषध्य चरित, शिशुपाल वध, अमर-शतक, कुमार संभव, शकुन्तला और अनेक समसामयिक संस्कृत सुभाषित संग्रहों के पदों की छाया ढूंढी जा सकती है। इसी प्रकार कर्पूर मंजरी के दो प्राकृत पदों की छाया भी मिलती है। इस सब के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि का अध्ययन पर्याप्त था। इस कथन का अर्थ यह कदापि नहीं कि कवि ने संस्कृत कविता का रूपान्तर किया हो। उसके कृतत्व में कुछ ऐसा अपनापन है जो उसे मौलिक बना देता है। यही कारण है कि संस्कृत के इतने ग्रन्थों से प्रभावित होने पर भी वसन्त-विलास का एक भी पद 'ऋतु-संहार' से प्रभावित नहीं है।

'फागु' काव्यों का उद्भव संभवतया लोकगीतों के रूप में ही हुआ होगा। 'ईसुरी के फाग' बुन्देलखण्ड में लोक-गीत बन गये हैं। 'होरी' 'फाग' आदि लोक-गीत राजस्थानी में आज भी पाये जाते हैं। इस 'फाग' परम्परा में हमें दो प्रकार मिलते हैं—वैष्णव फाग (जैनेत्तर फाग) प्रायः राधाकृष्ण को लेकर चलते हैं और जैन फागु जैन महापुरुषों के पावन आदर्शों व चरित्रों को लेकर। वसन्त-विलास इन दोनों प्रचलित परम्पराओं में अपनी एक नई कड़ी जोड़ता है। 'वसन्त-विलास' के नायक व नायिका जन-साधारण हैं। एक ओर ऐसा करके जहां कवि ने अपनी रचना को जन-साधारण के अधिक निकट पहुँचाने की कोशिश की है, वहां दूसरी ओर संस्कृत व प्राकृत काव्य से भाव ग्रहण करके उसमें 'क्लेसिकल टच' देने की कोशिश की है। यह विचित्र समन्वय बहुधा आलोचक को भ्रम में डाल देता है। नवीन मार्गान्वेषण व गतानुगतिता का विचित्र मेल। इसे ही हम परम्परा की रक्षा और प्रगति के अग्रिम चरण कह सकेंगे।

समूचा 'फागु' प्रभाव एक्य की दृष्टि से बहुत सफल है। गुणवन्त का रचना-चातुर्य और वर्णन-पटुता उसकी कविता से साफ झलकती है। गुणवन्त ने जिन संस्कृत पदों से छाया ग्रहण की है, उनका चयन भी बड़ी सावधानी और 'फागु' काव्य—रूप के पूर्णतः उपयुक्त है। कवि ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, समासोक्ति, अर्थान्तरन्यास, सन्देह आदि अलंकारों का उपयोग अपने काव्य में कुशलता से किया है। अलंकार, अलंकार मात्र ही रहें। सिर उठा कर कविता पर छा जाने का अवसर उन्हें नहीं मिल पाया। इसीलिये एक भी स्थल बोझिल नहीं जान पड़ता है।

यह है हमारे प्राचीन कवि गुणवन्त के जीवन व कृतृत्व का लेखा जोखा, जो आज भी पर्याप्त तथ्यों के अभाव में अधूरा पड़ा है।

**

वसन्त विलास

पहिलउं सरसति अरचिसु रचिसु वसंत विलासु ।
वीणु धर इकरि दाहिणि वाहणि हंसुलउ जासु ॥१॥॥
पुहतीय सिवरति मरति हिव रितु तणीय वसंत ।
दह दिसि पसरइं परिमल निरमल थ्या दिशि अंत ॥२॥
बहिन हे गयइ हिमवंति वसंति लयउ अवतारू ।
अलि मकरं दिहिं मुहरिया कुहरिया सवि सहकार ॥३॥
वसंत तणा गुण गहगह्या महमह्या सवि घनसार ।
त्रिभुवनि जय जयकार पिका रव करइं अपार ॥४॥
पदमिनि परिमल बहकइं लहकइं मलय समीर ।
मयणु जिहां परि पंथीय पंथीय धाइं अधीर ॥५॥
मानिनि जन मन क्षोभन शोभन वाउला वांइं ।
निधुवन केलिक पार्माय कामीय अंगी सुहाइं ॥६॥
मुनि जननां मन भेदए छेदए मानिनी मानु ।
कामीय मनह आणंदए कंदए पथिक पराण ॥७॥
वनि विरच्यां कदलीहर दीहर मंडप माल ।
तलीया तोरण सुदन्र चंदर वाल विशाल ॥८॥
खेलन वावि सुखालीय जालीय गुउषि विश्रामु ।
मृगमदपूरी कपूरिहिं पूरिहिं जलि अभिराम ॥९॥
रंगभूमी सजकारीय भारीय कुंकुम धोल ।
सोवन सांकल सांधीय बांधीय चंपकि दोल ॥१०॥

तिहां विलसइं सवि कामुक जामुक हृदय चइ रंगि ।
काम जिस्या अलवेसर वेसु रचइं वर अंगि ॥११॥
अभिनव परि सिणगारीय नारीय मिलीय विसेसि ।
चंदन भरइं कचोलीय चोलीय मंडनरेसि ॥१२॥
चंदन वन अवगाहीय न्हाईय सरवरि नीर ।
मंद सुरभि हिम लक्षण दक्षिण वांइं समीर ॥१३॥
नयर निरूपमु ते वनु जीवनु तणउ युवान ।
वासभुवनि तहिं विहसइं जलसय अलीअल आण ॥१४॥
नव यौवन अभिरामति रामति करइं सुरंगि ।
स्वर्गि जिस्या सुर भासुर रासु रमइं वर अंगि ॥१५॥
कामुक जनमन जीवनु ती वनु नगर सुरंग ।
राजु करइ अवभंगिहि रंगिहिं राउ अनंगु ॥१६॥
अलिजन वसइं अनंत रे वसंतु तिहां परधान ।
तरूअर वासनिकेतन केतन किशल संतान ॥१७॥
वनि विरचइ श्री नंदनु चंदनु चंदचउ मीतु ॥
रति अनइ प्रीति सिउं सोहए मोहए त्रिभुवन चीतु ॥१८॥
गरूउ मदन महीपति दीपति सहण न जाइ ।
करइ नवी कइ जुगति रे जगति प्रतापु न जांइं ॥१९॥
कुसुम तणुं करि धणुह रे गुणह रे भमरूला माल ।
लघु लाधवी नवि चूकइ मूंकइ शर सुकुमाल ॥२०॥
मयणु जिवयण निरोपए लोपए कोइ न आण ।
मानिनी जन मन क्षाकए ताकए किशल कृपाण ॥२१॥

इम देषी रिधि कामनी कामिनी किन्नर कंठि ।
नेह गहेल्ली मानिनी माननी मूकइं गंठि ॥२२॥
कोइलि आंबुलाडालिहिं आलिहिं करइ निनादु ।
कामतणुं करि आइसि आइसि पाडए सादु ॥२३॥
थंमण थिय न पयोहर, मोहु रच उमग मार ।
मान रचउ किस्या कारण, तारूणु दीह बिच्यारि ॥२३॥
नाहु निंछी छिमगांमटि सामटि मइलु अजाणि ।
मयणु महामडु न सहीइ सही इ हणइ ए बाणि ॥२४॥
इण परि कोइलि कूजइं पूजइं युवति मनोर ।
विधुर वियोगिनी धूजइं कूजइं मयणकिशोर ॥२६॥
जिम जिम विहंसइ वणसइ विणसइ मानिनी मानु ।
यौवन मदिहि उदचति दंपति थाइं युवान ॥२७॥
जइ किमइ गजगति चालइ सालइ विरहिणि अंगु ।
बालइ विरहि करालीय बालीय चोलीय अंगु ॥२८॥
घूमइ मधुप सकेसर केसर मुकुल असंख ।
चालइ रतिपति सूरइं पूरइं सुभटि कि शंख ॥२६॥
वउलि विलूला महुअर बहुअ रचइं झणकार ।
मयण रहइं किरि अणुदिण बंदिण करइं कइ वार ॥३०॥
चांपल तरूभरनी कली नीकली सोवन वानि ।
मार मारग ऊदीपक दोपक कलीय समान ॥३१॥
बांधइ कामुकि करकसु तरकसु पाडल फूल ।
मांहि रच्यां किरि केसर ते सर निकर अमूल ॥३२॥

आंबुलइ मांजरि लागीय जागीय मधुकर माल ।
मूकइं मारू कि विरहि हिअई सधूमवराल ॥३३॥
केसूयकली अति वांकुडी आंकुडी मयणची जाणि ।
विरहिणिनां इणि कालिज कालिज काढइ ताणि ॥३४॥
वीर सुभट कुसुमायुध आयुध शाल अशोक ।
किशल जिस्यां असि भबकइं भबकइं विरहिणी लोक ॥३५॥
पथिक भयंकर केतु किं केतु किदल सुकुमार ।
अवर ते विरह विदारण दारण करवत धार ॥३६॥
इम देषीय वनसंपइ कंपइ विरहिणि साथु ।
आंसूअ नयण निशा भरइं सांभरइं जिम जिम नाथु ॥३७॥
विरहि करालीय फालीय बालीय चोलीय अगु ।
विषय गणइ तृण तोलइ बोलइ ते बहु भंग ॥३८॥
रहि रहि तोरीय जो इलि कोइलि स्युं बहु वास ।
नाहुलउ अजीय न आवइ भावइ मूं न विलास ॥३९॥
उरवरि हारू ते भारू मू सपरि सिंगारू अंगारू ।
चीतु हरइ नवि चंदनु चंन्द्र नही मनोहारू ॥४०॥
माइ मू दूध अनीठउं दीठउं गमइ न चीरू ।
भोजनु आजु ऊचीठऊं मीठउ स्वदइ न नीरू ॥४१॥
सकल कला तुय निशाकर श्याकर सयरि सतापु ।
अबल म मारि कलंकिय शंकियरे हिव पाप ॥४२॥
भमरला छांडि न पाखलि खांखल थ्यां अम्ह सयर ।
चांदुला सयर संतापण आपण तां नही वररू ॥४३॥

बहिनूए रहइ न मनमथ मनमथ तउ दीहराति ।
अंग अनोपम शोषइ पोषइ वयरू अराति ॥४४॥
कहि सहि मुझ प्रिय वातडी रातडी किमइ न जाइ ।
दोहिलउ मकरिन केतन चेतु नही मुझ ठाइ ॥४५॥
सखि मुझ फरकइ जांघडी तां घडी बिहुं लगइ आजु ।
दूष सवे हिव वामिसु पामिसु प्रिय तणउं राजु ॥४६॥
विरहु सहू तहिं भागलउ कागलउ कुरलतउ पेषि ।
वायसना गुण वरणए अरण ए त्यजीय विशेषि ॥४७॥
धन धन वायस तू सर मूं सरवसु तूं देस ।
भोजनि कूर करंबलउ आंबलउ जइ हुं लहेस ॥४८॥
देसु कपूरची वासि रे वासि वली सरू एउ ।
सोवन चांच निरूपम रूपम पांषडीउ बेउ ॥४९॥
शकुन विचारि संभावीया आवीया तींहं वालंभ ।
रसि भरि निज प्रिय निरषीय हरिषिय दिइं परिरंभ ॥५०॥
रंगि रमइं मनि हरिसीय सरिसीय निज भरतारि ।
दीसइं ते गयगमणीय नमणीय कुचभर भारि ॥५१॥
कामिनि नाहुला जी सुख तीं मुखि कहण न जाइं ।
पामीय नइ प्रियसंगम अंग मनोहर थाइं ॥५२॥
षूंप भरी सिरि केतुकि सेत किया सिंगार ।
दीसइं ते गयगमणीय नमणीय कुसुमचइ भारि ॥५३॥
सहजि सलील मदालस आलसीयां तींहं अंग ।
रासु रमइं अबला वनि लावनिसयरिसु रंग ॥५४॥

कान कि झलकइं वीज नउ वीज नउ चंद्रु कि भालि ।
गल्ल हसइं सकलंक मयंकह बिंबु विशाल ॥५५॥
मुख आगलि तुं मलिन रे नलिन जई जलिन्हाइ ।
दंतह बीज दिषाडि म दाडिम तुं जि तमाहि ॥५६॥
मणिमय कुंडल कानि रे वानि हसइं हरीयाल ।
पंचमु आलापयति कंठि रे कंठि मुताहलमाल ॥५७॥
वीणि भणउं कि भुजंगमु जंगमु मदन कृपाण ।
किरि विषमायुधि प्रकटीय भृकुटीय धणुह समाण ॥५८॥
सीसु सींदूरि वूरिय पूरिय मोतीय चंगु ।
राषडी जडीय कि माणिकि जाणिकि फणिमणि चंगु ॥५९॥
तीहं मुखि मुनि मन सालए चालए रथ कि अनंगु ।
सूर समान कि कुंडल मंडल कियां रथ अंग ॥६०॥
भमह कि मनमथ घुणहीय गुणहीय वरतणु हार ।
बाण कि नयण रे मोहइं सोहइं सयल संसारू ॥६१॥
हरिण हरावइ जोतीय मोतीयना शरि जालि ।
रंगि निरूपम अधर रे अधर कियां परवाल ॥६२॥
तिल कुसुमोपम नाकु रे लांकु रे लीजइ मूंठि ।
किशलय कोमल पाणि रे जाणि रे चोल मंजीठ ॥६३॥
बाहुलता अति कोमल कमल मृणाल समान ।
जीपइं उदरि पंचानन आनन नहीं उपमानु ॥६४॥
कुच बि अमीयकलसा पणि थांपणि तणीय अनंग ।
तीहंचउ राषणहारू कि हारू ति धवल भुजंग ॥६५॥

नमणि करइ न पयोघर योधर सुरत संग्रामि ।
कंचुक त्यजइ संनाहु रे नाहु महाभड़ पामि ॥६६॥
नाभि गंभीर सरोवर उरवरि त्रिवलि तरंग ।
जघन समेखल पीवर चीवर पहिरिणि चंग ॥६७॥
निरूपमणइ विधि तां घडी जांघड़ी उपम न जाइ ।
करि कंकण पइ नेउर केउर बांहड़ी आइ ॥६८॥
अलविंहिं लोचन मींचइ हिंचइ दोलिहि एकि ।
एकि हणइ प्रिय कमलि रे रमलि करइ जल केलि ॥६९॥
एकि दिइ सहि लालीय तालीय छंदि रास ।
एकि दिइ उपालंभु वालं भणहिं सविलास ॥७०॥
मुरूकलइ मुख मचकोडइ मोडइ ललवल अंग ।
वानि स धनुष वपोडए लोडए चित्त सुरंगु ॥७१॥
पाडल कली अति कूअली तु जलीयल म धंधोलि ।
तउ गुण वेधति साचउं काचउं महीउ म रोलि ॥७२॥
कंटक संकटि एवडइ केवडइ पड़सी भृंगु ।
छयलपणइ गुण माणइ जाणइ परिमल रंगु ॥७३॥
वउल सिरी मदभीभलइ भलपणु अलि राज ।
संपति विणु तणु मालती मालती वीसरी आज ॥७४॥
चालइ नेह पराणउ जाणउं मलउ सखि भृंगु ।
अलग थिउ अति नमणइ दमणइ लिइ रसु रंगु ॥७५॥
चालइ खिलखिवा विवरू रे भमरू निहालइ मागु ।
आचरियां इणि नियगुण नींगुण स्युं तुझ लागु ॥७६॥

केसूय गरबु म तुं धरि मूं सिरि भसलु बइठु ।
मालइ विरहिं बहुअ दहु अव हुँ भणी बइठ्ठु ॥७७॥
सखि अलि चलण न चापइ चांपइ लिअइ न गंधु ।
रूडउ दोहग लागइ आगइ इस्यु निबंधु ॥७८॥
भमरि भमंतउ गुणु करइ अगरु जि कोरीउ कोइ ।
अजीय रे तींणि बरांसउइ वंस विणासइ सोइ ॥७९॥
मूरषप्रेम सुहांतीय जातीय जईअ म चीति ।
विहसीय नवीय निवालीय बालीय मंडपि प्रीति ॥८०॥
एक थुड वउल नई वेउल बेउ लतां नव नेहु ।
भमर विचालइं किस्यां मरइं पामरि विलसिन बेउ ॥८१॥
मकरंदि मातीय पदमिनि पदमिनि जिम नव नेहु ।
अवसरी ले रसु मूंकइ चूकइ भमर न देहु ॥८२॥
भमर पलास कमा बुला अंबुला आंबिली छांडी ।
कुचभरी फल तकि तरुणीय करूणी स्युं रति मांडि ॥८३॥
इण परि निज प्रियु रंज वंइ मुंजवयण इणि ठाइ ।
धनु धनु ते गुणवंत वसंत विलासु जि गांइं ॥८४॥

★

श्रीधर

●●

[नाद-सौन्दर्य और लय दोनों का अपूर्व योग श्रीधर की कविता में पाया जाता है।]

—क० मा० मुन्शी

श्रीधर

●●

राजस्थानी वीर-काव्यों यथा पृथ्वीराज रासो, खुमाण रासो, हम्मीर रासो, आदि की प्रामाणिकता और रचना-काल को लेकर विद्वानों में पिछले काफी समय से मत-भेद है। ऐतिहासिक दृष्टि से तो इनमें से अनेक काव्य-ग्रन्थों की शव-परीक्षा भी की जा चुकी है और उनमें से अधिकांश को अनैतिहासिक भी ठहराया जा चुका है। काव्य से इतिहास की अपेक्षा करने में और क्या मिलेगा? काव्य और इतिहास दोनों के तत्व, आधारशिला और क्षेत्र भिन्न हैं, दोनों के दायित्व भी भिन्न हैं किन्तु ऐतिहासिक काव्य से हम इतिहास व काव्य दोनों के दायित्वों का समान निर्वाह करने का पूर्वाग्रह रखते हैं। बहुधा ऐतिहासिक काव्य हमारी निर्धारण रेखा से नीचे ही ठहरते हैं। इतिहास-तत्व व काव्य-तत्व दोनों का सम्यक् निर्वाह नहीं हो पाता है किन्तु श्रीधर व्यास द्वारा निर्मित 'रणमल्ल' छन्द नामक रचना एक अपवाद है। इस छोटे से वीर गाथात्मक काव्य में जहाँ इतिहास की पूरी रक्षा हुई है। वहाँ कुछ स्थलों पर हमें बड़ी सशक्त अभिव्यक्ति भी मिलती है।

श्रीधर के जीवन के सम्बन्ध में हमारी जानकारी बहुत सीमित है। हमें उसकी जन्मभूमि, जन्मतिथि और बचपन के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती है। उनकी तीन रचनायें मानी जाती हैं—(१) रणमल्ल छन्द, (२) सप्तशती अथवा सात्त्विक छन्द, (३) कवित्त भागवत। इन तीनों कृतियों में इस विषय की कोई जानकारी नहीं दी गई है। अन्तर्साक्ष्य अथवा बहिर्साक्ष्य के आधार पर केवल यही कहा जा सकता है कि श्रीधर वि० सं० १४५४ में विद्यमान था। वह ईडर के राठौड़ नरेश रणमल्ल का राज्याश्रित कवि था और उस समय ईडर में ही रहता था। रणमल्ल छन्द के प्रारम्भ में रची गई ११ आर्यायें उसे अच्छा संस्कृतज्ञ सिद्ध करती हैं। अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग भी

उसकी कविता में हुआ है और ठीक तरीके पर हुआ है। वह सब उसकी अच्छी शिक्षा का द्योतक है। उसकी जाति का उल्लेख 'व्यास' कहके विद्वानों ने किया है[1]। किन्तु उनकी अप्रकाशित रचना 'कवित्त भागवत' में भागवत की कथा के स्थान पर देवी की स्तुति है। शायद उसका मूल नाम 'कवित्त भागवत' रहा हो। यदि ऐसा हो तो वह देवी का उपासक ठहरता है। उसने अपनी तीनों रचनाओं में मात्रिक छन्दों का प्रयोग ही अधिकतर किया है और तत्कालीन कवि-प्रिय छन्द अपनाये हैं। इसकी कृति 'रणमल्ल छन्द' का उल्लेख उदयसिंह भटनागर ने शुद्ध डिंगल व चारणी साहित्य की परम्परा में किया है[2]। 'रणमल्ल छन्द' सत्तर छन्दों का वीर काव्य है। जिसमें पाटण के सूबेदार जफर खाँ (बाद में मुज्जफर शाह) और ईडर के राठौड़ नरेश रणमल्ल के युद्ध का सजीव वर्णन है। इस युद्ध में रणमल्ल ने अपने शत्रु पर विजय पाई थी। गुजरात के प्रसिद्ध विद्वान के० ह० ध्रुव की मान्यता है कि यह युद्ध ई० सन् १३९७ में हुआ था[3]। किन्तु के० का० शास्त्री का इससे मत-भेद है[4]।

'रणमल्ल छन्द' एक छोटा काव्य-ग्रन्थ है किन्तु बड़ा ही ओजपूर्ण है। लेखक का भाषा पर पर्याप्त अधिकार जान पड़ता है। वर्णन प्राचीन परम्परा के मानों को लेकर चलते हैं फिर भी बहुत सजीव हैं। कवि नाद सौंदर्य का चतुर नियामक है और अपनी कविता में ऐसी शब्द-योजना रखता है, जो ध्वनि की दृष्टि से वीर रस के प्रसङ्ग के उपयुक्त होती है। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने कवि पर आरोप लगाया है कि उसकी भाषा में 'अनेक बार नाद-सौन्दर्य को लाने के हित में कई शब्दों को इतना अधिक बदल दिया गया है, कि वे पहिचाने भी नहीं जाते[5]। किन्तु मेरी धारणा है ऐसी मान्यता

---

१ के० का० शास्त्री० कवि चरित, पृष्ठ ५६।

२ हिन्दी अनुशीलन—वर्ष ८, अङ्क, ३ पृष्ठ ६२।

३ के० ह० ध्रुव—प्राचीन गुर्जर काव्य—प्रस्तावना—पृष्ठ ३।

४ के० का० शास्त्री—आपणा कविओ भाग १ पृष्ठ २६६

५ K. M. Munshi—Gujrat & its Literature—Page 150

भ्रान्ति पर आधारित है। एक उदाहरण मेरी धारणा को स्पष्ट कर देगा। राजस्थानी साहित्य के क्षेत्र में डॉ० मोतीलाल मेनारिया का योगदान महत्व का रहा है किन्तु वे भी ऐसे भ्रम से अपने को बचा नहीं पाये हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'डिंगल में वीर रस' में लिखा है—एक बात जो डिंगल के सभी कवियों में समान रूप से पाई जाती है, वह है शब्दों की मनमाने ढंग से तोड़ मरोड़। एक ही शब्द को············इस बुरी तरह तोड़ा है कि आज तो उसके मूल रूप को पहचानने में भी भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। आगे चलकर उन्होंने शब्दों के ऐसे अनेक उदारहण दिये हैं जैसे शुद्ध रूप 'युधिष्ठिर' का डिंगल कवियों द्वारा प्रयुक्त 'जुजठिल' यहां इस प्रसङ्ग में अधिक कहना प्रसङ्ग से बाहर की बात होगी, किन्तु वे उदाहरण में दिये गये सभी शब्द उत्तरकालीन अपभ्रंश (अवहट्ट) में मिलते हैं, किन्तु प्राकृत-अपभ्रंश की अपर्याप्त जानकारी और अध्ययन के बिना ऐसी भ्रामक धारणा का होना ही स्वाभाविक है। युधिष्ठिर के लिये अपभ्रंश के प्रख्यात और महाकवि चतुर्मुख स्वयंभू ने स्वयं जुहिट्ठिल' शब्द का प्रयोग किया है[6]। केवल यह उदाहरण ही पर्याप्त होगा। इसी प्रकार अन्य शब्दों का मूल उत्स भी ढूंढा जा सकता है। मेरी नम्र सम्मति के अनुसार भाषा सरस और नियमानुकूल है। हमें ऐसे प्राचीन ग्रन्थों की भाषा का अध्ययन करते हुए उनके वास्तविक समय को ध्यान में रखना होगा। 'रणमल्ल छन्द' की भाषा 'अवहट्ट' से विकसमान देश्य भाषा है। व्यंजना की दृष्टि से कहीं कहीं कविता बड़ी सुन्दर बन पड़ी है—यथा—

मुझ सिर कमल मेच्छपय लग्गइ,
तु गयणङ्गणि भाण न उग्गइ।
जां अम्बर पुडतलि तरणि रमइ,
तां कमधज कन्ध न धगड़ नमइ।

६ म० वि० मोदी—अपभ्रंश पाठावलि—पृष्ठ ३६

वीर वडवानल तण झाल शमइ,
पुण मेच्छ न आप' चास किमइ ।

[यदि मेरा सिर-कमल म्लेच्छ के चरणों में झुक जाय, तो गगन में सूर्य नहीं ऊगे । जब तक आकाश में सूर्य ऊगता है, तब तक कमधज (राठौड़ रणमल्ल) तुर्क को सिर नहीं झुका सकता । चाहे समुद्र-जल से वाड़वाग्नि भी बुझ जाय किन्तु मैं म्लेच्छ को एक इंच धरती नहीं लेने दूँगा]

युद्ध-वर्णन परम्परागत होने पर भी अनेक स्थलों पर कवि की प्रतिभा और वाग्विदग्धता का परिचायक है—जैसेः—

साहस वसि सुरताणदल संमुहरि जिम चमकंत ।
तिम रणमल्लह-रोस-वसि मूछ-सिहरि फुरकन्त ॥

[जैसे ही सुल्तान की सेना शूरता से उत्तेजित होने लगी, त्यों ही क्रोध के मारे रणमल्ल की मूछें फरकने लगी ।]

श्रीधर में काव्य-प्रतिभा थी और पर्याप्त गहराई थी । यह उसकी रचनाओं से स्पष्ट जान पड़ता है । अन्य वीर-रस के कवियों की भांति वह एकांगी नहीं था न अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में उसने अतिशयोक्ति से ही अधिक काम लिया है । सारा काव्य प्रासंगिक और सौष्ठव पूर्ण अलंकारों से युक्त है । यह रचना इतिहास, काव्य, छंद-शास्त्र और भाषा चारों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है । कवि की शेष दोनों रचनायें भी भाषा की दृष्टि से तो अधिक नहीं, पर सामग्री की दृष्टि से थोड़ा अन्तर रखती है । कवि विनयी था—गंभीर था, यह सप्तशती से स्पष्टतः जान पड़ता है । यह काव्य १२० छंदों का है और इसका प्रारंभ संस्कृत में एक शार्दूल विक्रीड़ित छंद द्वारा किया गया है । उसके बाद ही कवि ने कहा है—

शीधर कवित्त कहइ मती मंदह ।
पर्व छायो आर्या छंदह ॥

अपने को मतिमंद कह कर पुकारना ही उसके विनयी (Modesx) होने का प्रमाण है । संस्कृत, अवहट्ट, अरबी, फारसी और देश्य भाषा का अच्छा जानकार कवि श्रीधर राज्याश्रित कवि होने पर भी वास्तविक सहृदय कवि था । उसकी लेखनी वे ही रेखायें बनाती हैं, जो चित्र के लिये जरूरी हैं और उनकी गहराई और वक्रता भी ठीक उतनी ही है जितनी कि अनिवार्य हो । संयम और निष्ठा का पालक कवि श्रीधर !

रणमल्लछन्द

चुपई.

सतिरि महस माहणवइ साणह गई अरदास पासि सुरताणह ।
कणगरु कोस लीध हरि हिन्दू तु रणमल्ल इक्क नह बन्दू ॥११॥
पुण फुरमाण आण सुरताणी नहि रणमल्ल गणइ रणताणी ।
जिम हम्मीर वीर सिम्भखइ, तिम कमधज्ज मूछ भूहिं मुखइ ॥१२॥
चन्चलि चडी चिहू दिशि चम्पइ, थरथर थाणदार उरि कम्पइ ।
कमधज करि भरि लोह लहक्कइ, बिम्बहर बुम्ब अबुम्बह बक्कइ ॥१३॥
निशि खम्भाइच नयर उब्बकइ, धूंधलि धूंस पडइ धूलक्कइ ।
ग्रहि पुक्कार पढइ पठ्ठगतलि, रे रणमल्ल धाडि ! जब सम्भलि ॥१४॥
मुहुडासिया, मीर रहमाणी, दाम हराम करइ सुरताणी ।
माल हलाल खानखिजमत्ती तु रणमल्ल इक्क नह खित्ती ॥१५॥
हेलां लाख वंद बुलावि: लखि फुरमाण खान चल्लावि ।
इक रणमल्ल रायसुणि आलम रहिउ हइ हैराण खुदालम ॥१६॥
हय गय कटक थाट उल्लट्टिय, दहु दिसि वेस असेस पल्लोट्टिय ।
निहुटी वाटि काढ गढ घाल्ल; करू पाण रैयत—रणमल्ल ॥१७॥
ईडर भणी भौंछ सुरताणी फूंफूंकार फिरइ रहमाणी ।
मूंगल मेच्छ मुहइ मच्छर भरि हसि हुसियार हुया हलहलकरि ॥१८॥

सारसी

फूराइ फूं फूं फार फारक फौज फरि फूर माणिया ।
हुङ्कार करकडि,करइ शरभडि करवि करि क कम्माणियाँ ।
फुक्कारि मीर मलिक्क मुफरद मूछ मरडी मच्छरइ ।
सचरइ शकसुरताण साहण साहसी सवि सङ्गरइ ॥१४॥

दूहु

साहस वसि सुरताणदल, समुहरि जिम चमकन्त ।
तिम रणमल्लह रोस वसि, मूछ सिहरि फुरकन्त ॥२०॥

सारसी

फुरफुरहि लम्ब अलम्ब अम्बरि नेज निकर निरन्तर ।
भरभरहि भेरि भयङ्क भूंकर भरलि भूरि भयङ्कर ।
दडदडी दडदडकारि दडवड देसि दिसि दिसि दडवडइ ।
संचरइ शकसुरताण साहण साहसी सवि सङ्गरइ ॥२१॥

दुहु

साहस वसि सुरताण दल, समुहरि जिम दमकन्त ।
तिम तिम ईडरमिहर वरि, ढोल गहिर ढमकन्त, ॥२२॥

सारसी

ढमढमइ ढमढमकार ढुङ्कर ढोल ढोली जङ्गिया ।
सुरकरहि रणसरणाइ समुहरि सरस रसि समरङ्गिया ।
कलकलहि काहल कोडि कलरवि कुमल कायर थरथरइ ।
संचरइ शकसुरताण साहण साहसी सवि सङ्गरइ ॥२३॥

दुहा

जिम जिम लसकर उभ्रमइ करी निबुम्बुङ्कार ।
तिम तिम रणमल रोस भरि तोलइ तरल तुखार ॥२४

सारसी

तुक्खार तार तत्तार तेजी तरल तिक्ख तुरङ्गमा ।
पक्खरिय पक्खर, पवन पङ्खी पसरि पसरि निरूप्पमा ।

असवार आसुर अस अस लीइ असणि असुहड ईडरइ ।
संचरइ शकसुरताण साहण साहसी सवि सङ्गरइ ॥२५॥
'हल ऐयार हकारवि बुल्लइ; भुजबलि सबल गुर्टिदल घल्लइ ।
गयु खान खुद नगतलि चल्लिअ, शकदल दहु दिसि दिद्ध डहल्लिअ ॥२६॥
मलिक मन्त्र मभिझम निशि किद्धउ तव हेजब फुरमण सदिद्धउ ।
ईडर गढ़ि अस्सइ चडि चल्लिउ, जइ रणमल्ल पासि इम बुल्लिउ ॥२७॥
सिरि फुरमाण धरवि सुरताणी धर दय हाल माल दीवाणी ।
अगर गराम दास सवि छोडिअ करि चाकरी खान कर जोडिअ ॥२८॥
ग असि सरिसु बाहु ऊभारिअ बुल्लइ हठि हे जब हक्कारिअ, ।
मुझ सिर कमल मेच्छपय लग्गइ, तु गयणङ्गणि भाण न उग्गइ ॥२६॥

सिंह विलोकित

जां अम्बरपुडतलि तरणि रमइ, तां कमधजकन्धन धगड नमइ ।
वरि वडवानल तण झाल शमइ पुण मेच्छ न आपूं चास किमइ ॥६०॥
पुण रणरस जाण जरद जडी गुण सींगणि खच्ची खन्ति चडी ।
छत्तीस कुलह बल करिसु घणूं पय मग्गिसुरा हम्मीर तणूं ॥३१॥
दल दारूण दफ्फरखान जयी मिइं भग्गउ अग्गइ खग्गरयि ।
हिव पट्टण पद्धरि धरिसु पयं, नइ विनडिसु सत्तिरिसहस सयं ॥३२॥
मिइं संङ्गरि समसुद्दीन नडी पडि भग्गउ अङ्गोअङ्गि भिडी ।
जब मण्डिसि मुझ रणमल्ल सम तव देखिसि लसकरि सरिसु जमं ॥३३॥
मम मोडिममण्डि मलिक्क घणूं, हूँसमरि विडारण मेच्छ तणु ।
जब उठिसि हठि हक्कन्त रणि, तव न गणूं त्रय सुरताण तणि ॥३४॥
बल बुल्लिमवल्लि मल्लिक कहि, 'मम वरणि सिमुणसिम दूतमुहि।
जब चम्पिसि ईडस हरितलं, तव पेक्खिसि मुह रणमल्लबलं ॥३५॥

हय हेडवि सवि हेजब्ब गया, वहि वल्लि मल्लिक सलाम किया ।
'हिव करिसु धरा रणमल्लमयं, इम बोल्लइ हठि तोलन्त हयं ॥३६॥
नर केसरी ईडरसिहरिधणी, जब हेजव मुहि फरियाद सुणी ।
तब चमकि ढमक्कि मलिक्क करी धसि धाडिइ धाउ धूंस धरी ॥३७॥

चुप्पई

पसरइ पण्डर वेस भयङ्कर, नर पोक्कार हि करहि निरन्तर ।
हयमर वेगि गया ईडरतलि, सवि रणमल्ल करइ साहसि हुलि ॥३८॥
बिवहर भरि बुम्बाख वज्जइ, जलहर जिम सिंगणि गुण गज्जइ ।
बहु बलकाक करइ बाहुब्बल, धन्धलि धगड धरइ धरणी तलि ॥३९॥
अरियणदारूण दीन-अभयकर ! पण्डर-वेस थया निब्भय धर ।
बम्भण बाल बन्दि बहु किज्जइ धा कमधज्ज ! धारकरि लिज्जइ ॥४०॥

पञ्च चामर

रउद्द सद्द आसमुद्द साहसिक्क सूरइ ।
कठोर थोर घोर छोर पारसिक्क पूरइ ।
अहङ्ग गाय गेह गाहि गालिबाल किज्जइ ।
विछोहि जोइ नाह नेहि मेच्छ लोडि लिज्जइ ॥४१॥

दुहु

जिम जिम कमधज चीतवइ, असपति सरिसु विवाद।
तिम तिम योगिनि रूहिरर्रास, रत्ता करइ प्रसाद ॥४२॥

सारसी

परसादि बद्धि दिगन्त योगिनि जयजयारव अम्बरि ।
उच्छक्कि छक्कि दियन्त सिक्खा वीर धीर धरा वरि ।

दुद्दम्म मेच्छ विछोह रोह अ खोहि गाहवि किज्जइ ।
तूं हट्टि उट्ठवणीइ हठ्ठवि लोह हत्थ लिज्जइ ॥४३॥

दुहु

जिम जिम लसकर लोह रसि लोडइ, शासन लक्खि ।
ईडर वह चडसइ चडइ तिम तिम समरि कडक्कि ॥४४॥

पंच चामर

कडक्कि मूंछ भीच मेच्छ मल्ल मोलि मुग्गरि ।
चमक्कि चल्लि रणमल्ल भल्ल फेरि सङ्गरि ।
धमक्कि धार छोडि धान छण्डि–धाड़ि धग्गडा ।
पडक्कि वाटि पक्कडन्त मारि मीर . मक्कडा ॥४५॥

चुप्पई

हय खुरतयरेणइ रवि छाहिउ समुहर भरि ईडरवइ आइउ ।
खान खवास खेलि वलि धायु, ईडर अडर दुग्गतल गाह्यु ॥४६॥
दम दमकार ददाम दमक्कइ, ढमढम ढमढमढोल ढमक्कइ ।
तरवर तरवर वेस पहट्टइ, तरतर तुरक पडइ तलहट्टिइ ॥४७॥
विसर त्रिरङ्ग बङ्गरव पसरइ, रहि रहिमान मनन्तरि समरइ ।
गह गुज्जार निजाम कराणी हयमर फोज फिरइ सुरताणी ॥४८॥
सत्तिरि सहस सहिय सिल्लार ह दहु दिसी फिरवीं करि पुक्कारह ।
सुहडसद्द सम्भलिवि रउद्द ह धसमस धूंस करइ मफरद्द ह ।

हांढकी

मद भींभल सेर बचा बङ्गाली मूंगल महा मलिक्क
ईडर अद्धर सिक्खरि रणथम्भरि तलि तरवरइतुरक्क ।

हक्कारवि चिक्कट अहकटि चल्लइ, बुल्लइ बिरद बहुत्त ।
सुरताण सरिस सिल्लार सिपाही सवि मिलिसमरि पुहुत्त ॥५०॥
तलहट्टिइ मेल्लवि तरल तुरक्की तार ततार तुरङ्ग ।
उलट्टिअ असपति असणिअ वायरि सायखेलि तरङ्ग ।
'हल, हल''बिगरी, बिगरी' बोलंति अनीरलहरि छिल्लंत ।
रणकन्दलि कलह करइ, कलयायण कायर नर रेलन्त ॥५१॥

हेषारवि हयमर हसमसि, खुररवि असणि किपाण कसन्त ।
उद्धसवि कसाकसि, असि तरतर त्रिसि, धसमसि धसणि धसन्त ।
भूमण्डलि भड कमधज्ज भडोहडि भुजबलि भिडस भिडन्त ।
रणमल्ल रणाकुल रणि रोसारूण मुणसत्तणि तुवरन्त ॥५२॥

उल्लालवि भालवि भुज्झ कमाल ह लथवथि लोथि लडन्त ।
धारूक्कट धारि धगड धर धसमसि धसमसि धुब्ब पडन्त ।
कमधज्ज उदयगिरिमण्डल सविता भलमल मल्ल भडन्त ।
धुरि धसि धसि धूंस धरइ धगडायणि धर वरि रूण्ड रलन्त ॥५३॥

चुप्पई

वर कमधज्ज बीर शासन छलि कित्ति फुरइ नवखण्डि धरातलि ।
असपति सरिसु इक्क ईडरवइ रणि रणमल्ल मूछ मुहि मुरवइ ॥५४॥
असुर अभंग अंग ईडर तलि असपति दल कोलाहल सम्भलि ।
बम्भण बाल सुरहि अबला छलि हठि ऊठिउ कमधज्ज भुजाबलि ॥५५॥
पक्खरि पण्डर वेस भिडन्तु धसि धगडायण धूंसभरन्तु ।
हणहणि मुणसिम भणइ असभम, ताल मिलिउ हरि जम्म तणउ जिम ॥५६॥

दुज्जणरूक्ख-इक्कदावानल हयमर हठि हेडवि कोलाहलि ।
रणवाउलु रणमल्ल रणाकुल असिरसि गाह करइ गोरी दलि ॥५७॥

दुमिला

गोरीदल गाहवि दिट्ठ दहुदिसि गढि मढि गिरिगह्वरि गडियं ।
हणहणि हवकन्तउ हुं हुं हय हय हुङ्कारवि हयमरि चडियं ।
धडहडतउ धडि कमधज्ज धरातलि धसि धगडायण धूंस धरइ ।
ईडरवइ पण्डर वेस मरिसु रणि रामायण रणमल्ल करइ ॥५८॥
रोमञ्चिय रणसिर, राढि डरावण, रहि रहि बल बोल्लन्त बलि ।
पक्खर वर पुट्ठि पवंगम पठ्ठिय, पुहुतउ पट्ट पतः।हदलि ।
असि मारवि रूम्व रणायरि रगडिअ भञ्जइ धगड महा भडया ।
रणमल रणङ्गणि मोडि मिलन्ता मेच्छायण मूंगल मिडिया ॥३६॥
मुहु उच्छलि मूछ मुहच्छवि कच्छवि भूमइ मूंछ समुच्छलियां ।
उल्लालवि खग्ग करग्गि निरग्गल गणइ तिणइ दल अग्गलआ ।
ल्लय करि लसकरि लोहि छवच्छव छण्ट करइ छत्तीस छलि ।
रणमल्ल रणङ्गणि राउत विलसइ रवितलि खित्तिय रोसबलि ॥६०॥
सीचाणउ रा कमधज्ज निरग्गल झडपइ चडवड धगडचिडा ।
भडहड करि सत्तिरिसहस भडक्कइ, कमधज भुज भहवाय झडा ।
खत्तित्तणि खय करि खक्खर खूंदिअ खान मान खण्डन्त हुया ।
रणमल्ल भयङ्कर वीर विडारण टोडरमाल टोडर जडिया ॥६१॥

चुप्पइ

सोनगिरउ कन्हड सिम्भरवइ वेढि करी गज्जणवइ असुरइ ।
दहु दिसि दुज्जणदल दावाटूटअ सोमनाथ वड हत्थइ झट्टिय ॥६२॥

आदर करि शंकर थिर थप्पिय अचल राज चहुआण समप्पिय ।
असपति सरिसु साहसिम बक्कइ, सुरटमान रणमल्ल न मुक्कइ ॥६३॥
मरडी मूछ वडी मुहि मण्डइ मेच्छ सरिसु, गह गाह न छण्डइ ।
कसवइ काल किवाण करठि्ठय जां रणमल्ल रोसवसि उठि्ठय ॥६४॥
पण्डर डरइ समरि बाहुब्बलि खग्ग, तालजिम, तोलइ करतलि ।
दुज्ज उदण्ड दुदम्भ दुदण्डइ, इक्क अनेकि मलिक्क विहण्डइ ॥६५॥

भुजङ्ग प्रयात

जि बुम्बा अबुम्बा उलक्कि सलक्कि, जिवक्कि, बहक्कि लहक्कि चमक्कि ।
जि चङ्गि तुरङ्गि तरङ्ग चन्डता, रणम्मल्ल दिठ्ठेण दीन दडन्ता ॥६६॥
जि मुद्दा–समुद्दा, सदारूहसद्दा, जि बुम्बाल चुम्बाल बड्गाल बन्दा ।
जि झुम्झार तुक्खार कम्मालमुक्कि, रणम्मल्ल दिठ्ठेण ते ठाम चुक्कि ॥६७॥
जि रूक्का मलिक्का बलक्काक पाडि, जि जुद्धा मुड्ढा सनद्धा भजाडि ।
तिभू आखडी आ घडी दण्ड किज्जि, रणमल्ल दिट्ठ मुहि घाम लिज्जि ॥६८॥
जि बक्का अरक्का शरक्का वहन्ता, जि सव्वा सगव्वा भरव्वा सहन्ता ।
जि झूञ्झार उज्जार हज्जार चल्लि रणमल्ल दिट्ठि मुहि घास घल्लि ॥६९॥

छप्पय

'हिव किर भाल पहारि धार गढ गाहवि छण्डइ ।
कसबे–कडी किवाण पट्टि किलवायण खण्डइ ।
भुजबलि भल्लइ भिडिअ भरी भय भरूयचि पइसूं ।
धरी अ खम्भाइच्च असुरसिरि चम्पवि वइसूं ।
प्रहऊगाम पट्टणि पट्ट करि धगड़ायण धन्धलि धरू ।
ईडरवइ रा रणमल्ल कहि, 'इक्कछत्त रवितलि करू ॥७०॥

कवि भीम

[सद्यवत्स और सावलिंगा की लोककथा को लेकर जैनेत्तर कवि भीम ने एक प्रबन्ध लिखा जो देश्य भाषा में इस विषय का सबसे जूना काव्य है ।

—प्रो० मं० र० मजुमदार।

कवि भीम

●●

'भारतीय कवि इतिहास-प्रसिद्ध पात्र को भी निजंधरी कथानकों की ऊंचाई तक ले जाना चाहता है। इस कार्य के लिये वह कुछ ऐसी कथानक रूढ़ियों का प्रयोग करता है, जो कथानक को अभिलषित ढंग से मोड़ देने के लिए दीर्घकाल से भारतवर्ष की निजंधरी कथाओं में स्वीकृत होते आये हैं और कुछ ऐसे विश्वासों का आश्रय लेता है जो इस देश के पुराणों में और लोककथाओं में दीर्घकाल से चले आ रहे हैं। इन कथानक रूढ़ियों से काव्य में सरसता आती है और घटना-प्रवाह में लोच आ जाती है।' आचार्य द्विवेदीजी का यह विश्लेषण अनेक राजस्थानी ग्रन्थों-पर पूर्णतः सही लागू होता है। सम्वत १४६६ में लिखित ६७२ कड़ियों का काव्य 'सदयवत्स चरित' ऐसा ही एक उदाहरण है। इस काव्य का रचयिता कवि भीम दुर्भाग्य से अपने उच्चकोटि के काव्य के अनुरूप प्रसिद्धि नहीं पा सका, किन्तु यह सब अपर्याप्त जानकारी के अभाव में हुआ। यह निसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि कवि भीम प्रदत्त 'सदयवत्स चरित' काव्य की गणना प्राचीन राजस्थानी के श्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थों यथा 'रणमल्ल छन्द' कान्हड़दे प्रबन्ध' 'ढोला मारू रा दूहा' 'माधवानल' कामकंदला' आदि के समकक्ष की जा सकती है।

इस कथा को आधार बना कर रत्नशेखर सूरि के शिष्य जैन विद्वान हर्षवर्धन ने संवत १५१७ में संस्कृत में एक गद्य कथा लिखी। भीम की रचना अथवा हर्षवर्धन की रचना से प्रेरित होकर अथवा तत्कालीन समाज में बहुत लोकप्रिय होने वाले इस कथानक को आधार बनाकर अनेक जैन अजैन विद्वानों ने इस ओर कलम उठाई (विस्तृत विवरण के लिये देखिए— राजस्थान भारती भाग ३ अंक १ में श्री अगरचन्द नाहटा का

लेख 'सदयवत्स— सावलिंगा की प्रेम कथा') किन्तु भीम सी काव्य-प्रतिभा बिरले ही पा सके। उज्जयिनी के राजा प्रभुवत्स और शालिवाहन की राजकुमारी सावलिंगा की इस प्रेम-कहानी को कवि ने अपूर्व कौशल से साकार कर दिया है। लोक-मानस में क्रीड़ाशील इस उपाख्यान को साहित्य की कोटि में रख दिया है। जांच करने से पता चला कि यह कथानक काफी पुराना है। वैसे 'सदयवत्स की अवस्थिति का समय निश्चित नहीं। पर संस्कृत कथानक में जैनाचार्य कालक के साथ उसका संबंध जोड़ा गया है एवं कथा में उज्जयिनि हरिसिद्ध माता, प्रतिष्ठान नगर व शालीवाहन राजा, बावन वीर, खापरा चोर आदि का उल्लेख है। तदनुसार विक्रम के समकालीन सिद्ध होता है, अतः विक्रम कथाओं जितनी ही इस कथा की प्राचीनता समझी जा सकती है।' नाहटाजी व प्रो० मजुमदार की इस मान्यता में आश्चर्य की कोई बात नहीं। यह भारतीय-साहित्य की विशेषता है। विंटरनित्ज ने रामायण और महाभारत के काल पर विचार करते हुए लिखा है— 'भारतीय साहित्य के इतिहास में यह अद्भुत विरोधाभास है कि रामायण-महाभारत से अधिक प्राचीन है और महाभारत रामायण से अधिक प्राचीन यही विशेषता हमें इस काव्य में जान पड़ती है। सदयवत्स की द्यूत कला-कुशलता को देख हमें राजा नल की याद आ जाती है। प्रस्तुत कवि की रचना ऐसे गम्भीर अध्ययन की अपेक्षा रखती है।

कवि के जन्म, मृत्यु, बचपन, निवास, जीवन किसी के सम्बन्ध में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती। कवि सहृदय है, यह उसकी कविता की सरसता व वाग्विदग्धता से जान पड़ता है। संस्कृत की अच्छी शिक्षा पाया हुआ था। यह उसके द्वारा रचित, ग्रन्थ के प्रारम्भ में आर्याओं से जान पड़ता है, क्योंकि उनमें कोई त्रुटि नहीं दीख पड़ती। वह वैदिक धर्मावलम्बी है ग्रन्थ के प्रारम्भ में उसने ओंकार, सरस्वती व गणपति की वन्दना की है। कवि का अपनी भाषा पर पर्याप्त अधिकार जान पड़ता है। कविता कला की दृष्टि से भी वह सफल सिद्ध होता है। उसने प्रारम्भ में अपने काव्य के सम्बन्ध में घोषणा की है—

'सिंगार हास करुणा रूद्दो वीरो भयान वीभत्थो।
अद्भुत शांत नवइ रसि जसु जंपिसु सुदयवच्छस्स ॥

कहना न होगा कि इस छोटे से काव्य-ग्रन्थ में कवि ने अपने कौशल से साहित्य के नवों रसों की उचित उद्भावना की है। कवि की भाषा तत्कालीन 'पुरानी पश्चिमी राजस्थानी' (टेसिटरी) है। भाषा के अध्येताओं के लिए यह ग्रन्थ बड़े काम का है। तत्कालीन भाषा का बहुत कुछ स्वरूप इसमें सुरक्षित रह गया है। सदयवत्स के पूर्व जन्मों का भी वर्णन किया गया है। ऐसा करने में प्रेम कथा के शृंगार रस से उसका वीर और अद्भुत रस का निरूपण अधिक आगे बढ़ गया है। छन्दों की दृष्टि से दूहा, पद्धरी, चोपाई, वस्तु, छप्पय, कुण्डलिया व मौक्तिक दाम का प्रयोग किया गया है। कवि की शैली ओज और प्रसाद गुण सम्पन्न है। प्रत्येक छन्द का प्रयोग स्थल और विषय के अनुरूप किया गया है। अनेक स्थलों पर कवि ने घटनाओं का चित्रोपम सरस वर्णन किया है। ऐसा जान पड़ता है कि मानों हमारे सामने घटना घटित हो रही है।

इतना सब होने पर भी कवि को किसी बात का अभिमान नहीं है—वह कहता है—

'गुरु लहुजि केवि कवियण सरसुअत्था सुछंदबंधमरा।
ए कंठठाणि सव्वे करजुअल जोडी पणिमामि ॥'

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने राजस्थानी को एक बोली मानना चाहा। 'वीर गाथाकाल' का समूचा ढाचा राजस्थान (बृहत्तर गुर्जर/राजस्थान जिसमें बकौल कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी के सौराष्ट, कच्छ, वर्तमान राजस्थान का उत्तर/पश्चिम-दक्षिण प्रदेश व मालवा का काफी अंश शामिल है।) के साहित्यकारों पर ठहराया गया है किन्तु इसके बाद उनकी उपेक्षा की जाती रही है। इसी उपेक्षा की मनोवृत्ति के कारण राजस्थानी काव्यग्रन्थ-रत्नों और श्रेष्ट कवियों को पूछा तक नहीं गया। यह

एकांकी दृष्टिकोण कितना अधिक भ्रम, अराजकता और अज्ञान फैला रहा है, उस पर यहां कुछ विशेष कहना समीचीन नहीं होगा, किन्तु जब वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस राजस्थान के विपुल, अज्ञात और अप्रकाशित साहित्य का सम्यक अध्ययन किया जायेगा तो निसन्देह हमें अपने साहित्य का इतिहास नये सिरे से लिखना पड़ेगा। और तब आज का उपेक्षित, लोक प्रचलित कथा को वाणी का परिधान पहिनाने वाले सहृदय, काव्यकुशल कवि भीम अपने महत्व के अनुकूल स्थान अवश्य पायेगा।

●●

सदयवत्स चरित्र

वस्त–

विप्प जंपइ विप्प जंपइ निसुणि नरनाह ।
अयवंती ज्योतिषकला ..लकम्मि अम्ह अछइ अग्गइ ।
वत्तारउ संवच्छरह नष्ट–जन्म नविचित्ति लगइ ।
जं सुरपुरि जं नरभुवणि जं जं हुइ पायालि ।
नरवर निजमंदिरथिकूं तं जाणूं तिणि कालि ॥१५॥
लगन लिहंत वहंत तीणइ कहीय षडि कर झल्लि ।
जइ पुच्छिसि पहु वच्छ पहू मरइ ति कुंजर कल्लि ॥१६॥

× × ×

धाइ धसइ अनइ धडहडइ, किरि आसाढि अंबर गडअडइ ।
आपूं अंगतणउं भृंगारू, आपूं एकाउलिनउ हार ।
आपूं अधिक वलिउ पसाउ, जे बलीउ बांधइ गजराउ ।
गजि चउहटइ जइ मंडिउ गाह, पानतणां सवि लाध्यां लाह ।
फूल तणा तहि पुर्या पगर, मइगलि माथि कीधूं नगर ।
पुहतउ श्रेणी सुगंधीतणी, राजवस्त्र मेली रेवणी ।
लांषइ केसर नइ कपूर, वास्यां तेल वहाव्यां पूर ॥३६॥
तीणइ दीठइ दोसी दडवडइ, पारिषिनइ पगि पींडी चडइ ।
फडीया फोफलीया सूनार नाठा लोक न जाणइ सार ॥३७॥
हाटमांहि हउं हालकुल्लोल , किरि कमलावति करइ कलोल ।
पोता लाध्या पारिषितणां , कापडि सरिस किरियाणा घणां ॥३८॥

एकि अटगलि मालि गढि चढ्या, इकि पाधरि दस दिसि दडवड्यां।
इकि छावडां अछइ छडछोक, ते सीकिइ ध्या लूसइ लोक ॥३९॥
आगइ पंचायण पाषरिउ, आगइ पन्नग पंषावरिउ।
आगइ गज अंगिज मदरूत, वलि वारुणी भत्रिथिउं भूत ॥४१॥
सुंडाहल पूरइ परचंड, दंतूसल जाणे जमदंड।
पाडइ विसमा पोलि प्रसाद, नर-नरिंद उतारइ नाद ॥४२॥

पाघडी

तव आविउ धाइउ ते नारीभरतार, बुंबारव पण करइ अपार।
कोइ सुभट शूर साहसिक शुद्ध, कोइ धीरवीर वंसह विशुद्ध ॥५१॥
कोइ जाइउ चउदिसि चपल अंग, कोइ अकल अटल आहवि अहंग।
कोइ खित्तीय षलषंडणसमत्थ, को अछइ छयल्ल खितिखग्गह हत्थ ।५२॥
तव धायु धवड धसमसंत, फिरि आवइ केसरि कसकसंत।
बर्बरीय भांटि भटकइ कवालि, वलकलिउ वटाणु थिउ भ्रुकुटिभागि।५३

× × ×

गइ अडिउ गयंदु कि पडिउ पव्व, सुर अंतरिषि पेक्खि अपुव्व।
जय जय शब्दु जंपइ जगत, पहु वच्छ अच्चिरिउ पेक्खि पुत्त।
गयगमणि रमणि तुरगय गमंति, भड अनिललग्ग अंगज नमंति।
पय पंकय लंकतलि चिउरडंति, पति भत्ति चित्ति धरिचडवडंति ॥४७
जस जघजूअल वररंभथंभ, पिथल कि उरथल करिण कुंभ।
कर पल्लव नव शाषा अशोक, सौवन्न वन्न सारीर रोक ॥४८॥
मुख कमल अमल शशि हरसरिच्छ, निलवटि तिलय ताडीक मच्छ,
कुंडल कि कवि पायार मार, को सीसनिकर परिगर अगार ॥४९॥

तिल फुल्ल नास संजुत्त मत्त, त्रडि दाडिम दंत अहरा रगत्त ।
अंजनसह पंजनसरिस नित्त, सीमंतकुंत किरि मयरकित्त ॥५०॥
हुइ भमइ काम कोदंडषंड, कटि त्रिंत्रप्रलंबित वेणी दंड ।
उरि हार तार श्रेणीसमान, तनमंडल अवर न उपमान ॥५१॥
नाह कुरंगारंगणुथाल, जलविणु किमु जीवंती ।
नयण सरोवर प्रीतिजल, नेहिइ नीर पियंति ॥
धवलिहराए छूआ मुहुसाले, मज्झ राय नरवीरो ।
वर वीर सुदयवच्छो वंछउं, शिव पुज्जिहे महि ए ॥८॥
कलिजुगि कामुकतिरगो, पत्थंतय अत्थ साहए सयणो ।
षडमासि अवहि अग्गइ, मणवंछिय देइ माहेसो ॥

× × ×

हव धउल : राग धन्यासी

आसणतणउ अणाविउ ए नरवरिइं ए तरल तुरंग ।
साहणपति पलणाविउ ए पलाणि पवंग ।
तीणइ वरराउ चडाविउ ए ॥६४॥

चडंति षेविजे जुडंति ते तुरंग आणयूजे सुद्धषित्त सालिहुत्त
लक्खणे वषाणिउ ।
पायाल हुंति कीकी पयड होम दीउ आसणे सोहंति सुदय
बत्सवीर ते तुरंग आसणे ॥६५॥

चिहुं दिसि चामर ढलइ ए सिरवरि ए सोहइ छात्र ।
विप्र वेउ-धुनि उच्चरइ ए आ आ आगलि ए नानाविध पात्र ॥
बहु बंदिण कलरव करइ ए ॥६६॥

करंति बंदिणा अणिक्क मंगलिक्क मालयां ।
विचित निति पत्त पाडराग रंग तालयं ।
चडी तुरंगि चंगि अंगि सार सुंदरी रसे ।
ति चालवंति नारि च्यारि चामरं चिहू दिसे ॥६७॥

वर आगलि थिउ संचरइ ए आआ राण ले ए सरिसउ राउ ।
पायदल पार न पामीर ए आआ बलीपडउ ए नीसाणडे घाउ ।
हय दीसइ रयरायसारसी ए ॥६८॥

करिंति सारसी गइंद मंडिसुंडि डंबर, नीसाण ढोलढक्कघाउ हूअ ताव अंबर ।
उचित्तवाउ दिंति राउ वेगि तावग इकरो, प्रेमि सुदयवच्छवीर पत्त तोरणवरो ॥६९॥

गयगामिणि गुण विभवइ ए आआ शशिमुखि ए करइ सिणगार ।
हार एकाउलि उरि ठउइ ए आआ कंदर्पू ए समउ कुमार अहिण-वउ इंद नरिंदवरो ॥३००॥

नरिंद इंद मत्त लोइ लोपमज्झि मोह ए, अदिट्ठदिट्ठमाणिणी-मणंतरंगि मोहए ।
भवानिपत्ति पायभत्ति कंत लद्ध कामिणी, तेसुदवीर नवंति गे गयद्दगामिणी ॥३०१॥

कुंडलीउ ततः मौक्तिकदाम छंदः ।

पउमिणि हस्तिनी चित्रणी नारा, संखिणी सार किद्ध संगारा ।
रतिपतिरंगि मिलवि सहि रामा, पिक्खवि सुदयवत्स वर कामा ॥

जे कामनरिंदतणइ दलि सार, गुडया मयमत्त पयोहर भार ।
जे हिल्लि सागिल्लि चलइ चमकति, ते सुद्दयवत्स सिउ रंगि रमंति ।।
जे त्रट्ठय दिट्ठ कि नट्ठ कुरंगि, जे उप्पम रेह सनेह सुचंगि ।
जे चंदनि अङ्गि गमंति, ते सुद्दयवच्छि सिउ रंगि रमंति ।।
करइ निज भानिनि आणणि सो, हजे जाणजुवाण तणइ मनि मोह ।
जे परित्तत्त उर न मंति, ते मुद्दयवच्छि सिउ रंगि रमंति ।।
ठवइ उरि हार कि तारयश्रेणि, ढुलंति नितंब प्रलंबित वेणि ।
जे तारुणि आरूणि नित्त ध्रुमंति, ते सुद्दयवच्छि सिउरंगि रमंति ।

छप्पय

हे सही कहि कुण कज्जि, अज्ज उल्हास अंगि बहु ।
कुंकुमि कज्जलि कणय, कुसुमि सिंगार किद्ध मुह ।
भरीय सेसि सीमंत, कंत कंदप्पराय करि ।
गुडी साहण मयमत्त, नित्त सज्ज कि उप्परि ।
माणिसि निसि मयंक मधुरति मधुप, पहु वत्सतणउ मुझ मनि वसिउ ।
उल्हवण अनिल तकि तनुरयणि, सुदयवत्समुख निहि जिसिउ ।।

अग्गइ अहरा रत्त, अहिविल्लि विलासीय ।
अग्गइ लोयण लोल, अनइ कज्जलिहिं कलासीय ।
अग्गइ सिहिण सुथोर, अनइ हाराऊलि भारीय ।
अग्गइ गय मंथारि, अनइ नेउर झंकारीय ।
अग्गइ सुकाम किय कामिनी, अनइ वसंति निशि उज्जली ।
पुहु वच्छतणउ अमरंगि ससि, अनइ सुवर सुद्दा मिली ।।

× × ×

नंदिण तणइ बहिन त्रिशिणि, त्रिशिणि मानइ भाइ भणी ।
ए नातरूं नवुं नहीं आज, भाट भुवनि रहतां नहीं लाज ॥

× × ×

जिणि पाटणि पोढ़ा प्रासाद, मेरुशिखरसिउ वहइ विवाद ।
गरूउ गढ ऊचा आवास, किरि अहिणव दीसइ कविलास ॥६७॥
माहि महेस विष्णु नइ ब्रह्म, सहू समचरइ कुलोचित धर्म ।
जिनशासन गाढउगहगहइ, जीवदया देषी मन हरइ ॥६८॥
दिनकर भगतितणउ अतिभाव, अधिकउ परमेसरी प्रभाव ।
जे जोगिणि चउसठिनूं ठाम, चउसठि चेटकन उतिहि ठाम॥६९॥
गणपति क्षेत्रपालनी ख्याति, दिवस पाहिइं रूडेरी राति ।
ठामि ठामि मंडल मंडाइ, ठामि ठामि नितु गुणीया गाइ ॥७०॥
ठामि ठामि डोणां ढोइइं, ठामि ठामि जोणां जोइइ ।
सातइ वसण संसालइ जेउ, मांहि घणां छइं माणस तेउ ॥७१॥
इकि लीला लषमी लेइं जाइं, भोला भमइ सान वींकाइं ।
मणान कामण मोहणतणी, वरतइ धूरत विद्या घणी ॥७२॥
वसइ वासि छत्रीसइं कुली, माहि मोटा बहुत्तरि मण्डली ।
चउरासी सूरा सामन्त, च्यारि महाधर मंत्रि अनन्त ॥७३॥
चउरासी चुहटानि जुगति वरणावरणतणी बहु विगति ।
उत्तिम मध्यम लोक अपार, भामा भला न पामइ पार ॥७४॥
करइ राज सालिवाहण राउ, वहरीतणइ विध्वंसइ ठाइ ।
अऊठ पीठ पहिलूं पहिठाण, मामीय आलितणूं अहिठाण ॥७५॥

वस्त

कंत संभलि कंत संभलि कहइ कमलच्छि।
जु मइं लुप्पइ मयरहर तेन पालि पत्थऊ करिज्जइ।
सीह विच्छूटइ संकलह ति किम देव दोरी धरिज्जइ।
हत्थी अंकुस अवगणइ किम साहीजइ कन्नि।
तिय प्रियतम पाधारतां मुक्क विमासण मन्नि ॥७८॥
सुणि सुदयवीरवयणं सच्चं जं चवइ सावलिंगीए।
सिय दिवस पंच पच्छइ तिहि गमिउ जिहि न पुच्छोस ॥७९॥
तिणि वयणिसुद जंपइ माण धरेविरोसे हसेत्ति मुहकमले।
तिहुयणि ते को ठाणं जिहि जुवइ रहइ मह महिला ॥८०॥
वयण शशी नयणमई हंसगई उरि करिंद मग्गि हरी।
कणय पहाणंगंगी जत्थ तुयं तत्थ जीवभमणं च ॥८१॥
तिणि वयणि सुद्दवीरो गहवरिउ लग्गगल इमि वलंतो।
गयगमणि म धरि दुहिलिउ निवारि नयणांमि नीर भरियाइं ॥८२॥

इव अडयल

वलियौ रमणी रोयंति वारि हिं।
लोअण लोहि सकज्जल वारिहिं।
अवल जि नवू बुल्लइ वारिहिं।
जं भणि मुणइ स करे तिवारिहिं ॥८३॥

अडयल

आमि विरहि विलक्खौ पाणी लागी अगीं तिहां सप्पाणी।
कज्जललग्ग दिट्ठ दुउ पाणी पीधूं पुरिसि पशूवरिं पाणी ॥८४॥

नर नवरंग सही सावुज्जल किं कारणि पशुजेम पीयौ जल ।
नारी नरकरि लग्गौ कज्जल पीधि भीजइ भय भरइ न अंजल ॥८६॥

× × ×

एकि भणइ उतारउ लांव एक सेक दिवरावय पांव ।
एकि भणइ आलस मेल्हीइ एकी भणइ मंडल मांडीइ ।
एकि भणइ अम्ह हलूउ हाथ एकि भणइ दिउ कइउ काथ ।
आपापणी कला सवि कहइ गुणीया अनइ वइद गहगहइ ॥१९॥
गूजर वइद जिह्वारइं हसिउ जाणे धरणिधनतरि जिसिउ ।
दीठइ रूपिसरूप ओलषइ वैद अनेरा आलिइ भषइं ॥२०॥
एहनइ अंगि अग्गलउ अनंग नरवर को दीठउ नवरंग ।
मुर्छतइ मुरछा भाजिसिइ मिलिउ लोक देषी लाजसिइ ॥२१॥

× × ×

किरि हाकी उठी हनुमंत किरि कोपानलि चडिउ कृतांत
चडवड चउपर चालिउ इम किरि आविउ गुरू भारथ भीम॥१०॥
मोकलि बांह गाढ़ा बलवंत मोकलिजे सूरा सामन्त ।
मोकलि राउत रणि वाउला मोकलि जे आंगइ आउला ॥१७॥
जिणिइ अरथिइ न भाजइ भीड जिणिइ न टलइ परणी पीड ।
मागण मित्र काजि टालीइ ते संपत्ति सघली बालीइ ॥२८॥
अरथिइं सघला सीझइं काज अरथिइं आपणां कीजइ राज ।
अरथिइ सत्रि ढांकइ अखत्र वेची अरथ विछोडी सुं मित्र ॥२९॥
बांध्या राय विछोडइ बंध पडी कुवेला ऊडइ कंध ।
गडगाढ़िम नवि सीझइ अरथ तिणि वेला वाणीउ समरथ ॥३१॥

दूहा

ध्रूदा ! तुहाला साथ थिउ आंतरू अति उरतउ ।
हव जोसिइ जगनाथ साहस सामलया भणइ ॥४६॥
उंले आंतरि एहि तउ पइलुं पामीउं नहीं ।
वाहण विचि विहि लेहि निहरइ नीजामा पषइ ॥५०॥
ऊभी आस करेहि अबला आहेडी तणी ।
वर पइंठउ वि मरेहि केसरिनां पग किम नीसरइ ॥५१॥
नाह तुहाला नेह किम ऊसंकल एक भवि ।
जां दसवार न देह ए आपणउ न होमीइ ॥५२॥
मणिक मूंठि जलेहि पडइ तउ प्रापति पामीइ ।
नाह नवेरइ देहि दरसणि देषेवूं थिउं ॥५३॥
आसालूधी एक पीहरि मेलही पारणी ।
तिहनइ आज अनेकि ऊचाटइ ऊपांपलां ॥५४॥
ध्रूदा शोक सरोष मनि माहरइ कोइ नहीं ।
सही समे घड लाष कीधां आज अणोसरा ॥५५॥
जिणुणी काजि न दीह आंकया आवेत्रातणा ।
ते लेषेतां लीह करी कुडेरुं दाभिसइ ॥५६॥

नरपति नाल्ह

●●

[लोकरंजन के लिये वीसलदेव रासो में काव्य का सौन्दर्य मनोवैज्ञानिक ढंग से अनेक प्रसंगों में सजाया गया है। उसमें जीवन के स्वभाविक विचार गृहस्थ जीवन के सरल विश्वास, जन्मान्तरवाद, शकुन, संस्कार, बारहमासा, आदि बड़ी सरलता के साथ चित्रित किये गये है। स्थानीय प्रथाओं और व्यवहारों का भी बड़ा स्वभाविक वर्णन है इस प्रकार इस काव्य में स्थानीय अनुरंजन (Local Colour) विशेष मात्रा में है।]

—डॉ० रामकुमार वर्मा

नरपति नाल्ह

वैज्ञानिकों के हाथों में पड़कर जिस प्रकार कोई सुन्दर पुष्प अपनी सुन्दरता को खो बैठता है, क्योंकि वह एक विश्लेषक होता है जो उस पुष्प को खण्ड २ करके उसके विभिन्न अवयव देखना चाहता है; ठीक उसी प्रकार का हाल नरपति नाल्ह और उसकी रचना 'वीसलदे रासा' का साहित्य के दिग्गजों के द्वारा किया गया है। परिणामस्वरूप अनेक विरोधी और आधाररहित बातें कवि और उसकी कृति के सम्बन्ध में डंके की चोट कही जाने लगी। ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन करते हुए डॉ० उदयनारायण तिवारी कह बैठते हैं— 'वास्तव में नरपति न तो इतिहासज्ञ था और न कोई बड़ा कवि ही। किसी सुने सुनाये आख्यान के आधार पर लोगों को प्रसन्न करने के लिए उसने कुछ बेतुकी तुकबन्दी करके काव्य का एक ढांचा, येनकेन प्रकारेण खड़ा कर दिया, जिस पर उसके पश्चात् के कवियों ने भी नमक-मिर्च लगाया। इस प्रकार एक साधारण कवि के मिथ्या–बहुल–काव्य को लेकर जिसका असली रूपभी इस समय सुरक्षित नहीं, इतनी ऐतिहासिक ऊहापोह करनी ही व्यर्थ है[1]। मोतीलाल मेनारिया, वीसलदेव रासो के रचयिता नरपति नाल्ह को सोलहवीं शताब्दी के एक गुजराती कवि नरपति से अभिन्न मानते हैं। वे हमारा ध्यान एक नयी सम्भावना की ओर आकर्षित करते हैं– मालूम होता है कि मूल ग्रन्थ गुजराती में था, जिस पर किसी ने बाद में राजस्थानी का रंग चढ़ाया है[2]। और अपनी मान्यता के सिद्ध करने के लिए उन्होंने वीसल-दे रासो और गुजराती कवि नरपति की रचनाओं में भाषा और अभिव्यक्ति का साम्य दिखाया है। आचार्य हजारी प्रसाद भी मानते हैं कि मेनारियाजी

---

[1] उदयनारायण तिवारी—वीर काव्य, पृष्ठ २०८

[2] मोतीलाल मेनारिया— राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ ८८

की मान्यता ठीक है[३] । इधर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और सत्यजीवन वर्मा उन्हें भाट मानते हैं किन्तु अगरचन्दजी नाहटा सेवग। डॉ० रामकुमार वर्मा नरपति नाल्ह की अपने आलोचनात्मक इतिहास में काफी प्रशंसा करते हैं। मेनारियाजी उसे १६वीं. सत्यजीवन वर्मा १३वीं सदी का कवि ठहराते हैं। अब इस जाल से हम बाहर निकलें भी कैसे ? तर्कों के नश्तरों ने कवि और काव्य की हत्या कर दी है।

इन सब बातों पर हम एक एक करके विचार करेंगे । सबसे पहले हम इसकी जाति का प्रश्न लें। मेरी धारणा है कि कवि जैनेतर हिन्दू धर्मावलम्बी है, जो कि सरस्वती, हनुमंत आदि की स्तुति से जान पड़ता है। भाषा और शैली से वह चारणेत्तर ही जान पड़ता है। अतः उसे ब्राह्मण (सेवग) मानने में कोई बाधा नहीं हो सकती। (विशेष विवरण के लिए देखिए अगरचन्दजी नाहटा का लेख 'राजस्थानी' भाग३ अङ्क३) इसके बाद हम मेनारियाजी की इस स्थापना को देखें कि वीसलदेव रासो का रचयिता गुजराती कवि नरपति है। यद्यपि पद्धति और शैली, भाषा और अभिव्यक्ति का पर्याप्त साम्य दोनों की कविता में मेनारियाजी ने दिखाया है किन्तु मेरी मान्यता है कि दोनों कवि भिन्न हैं। केवल नाम साम्य अथवा कुछ पंक्तियों के साम्य को ही प्रबल प्रमाण मानकर दोनों में अभिन्नता स्थापित करना खतरे से खाली नहीं। गुजराती कवि नरपति की 'नन्दबत्रीशी' पंचदण्डनी वार्ता, स्नेह परिक्रम और निस्नेह परिक्रम। इन सारी कृतियों का अध्ययन करने से निम्न तथ्य प्रकट होते हैं।

(१) कवि संस्कृत का बहुत विद्वान है। उसने 'नन्दबत्रीशी में स्थान स्थान पर सुन्दर संस्कृत के श्लोक दिये हैं और फिर उन्हीं को गुजराती में चौपाई में प्रकट किया है। उसकी अन्य कृतियों में भी यह प्रवृत्ति साफ झलकती है। भाषा का झुकाव तत्सम शब्दों के प्रयोग की ओर है।

[३] हजारीप्रसाद द्विवेदी— हिन्दी साहित्य, पृष्ठ ५२।

(२) कवि ने अपनी कृतियों में बीच २ में गीतों की रचना की है। राजमती के विरह के अवसर पर हमें वीसलदे रासो मे कोई गीत नहीं मिलता।

(३) पन्च दण्ड में कवि ने रौद्र रस का इतना सुन्दर निरूपण किया है कि वकील मुन्शीजी के वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

(४) गुजराती कवि ने अपनी रचनाओं में गद्यका भी प्रयोग किया है।

(५) मालवा में जो स्थिति थी, उसका विस्तृत वर्णन, दुराचार और वाम मार्गी साधनाओं, मलीन उपासनाओं, योगियों व सामाजिकों द्वारा बलि प्रथा, सामाजिक सड़ांध-सभी का सचोट वर्णन 'पन्चदण्ड' में किया गया है।

(६) गुजराती विद्वानों की दृष्टि में कवि नरपति महत्वपूर्ण कवि है।

यदि गुजराती कवि और वीसलदेव रासो रचयिता एक ही है तो उनकी कविता में अनेक उक्त बातों का समावेश होना स्वाभाविक था किन्तु हम पाते हैं कि बात ऐसी नहीं है। वीसलदेव रासो का कवि नरपति नाल्ह हमें अपनी भाषा से गुजराती कवि से भिन्न जान पड़ता है। जहां गुजराती कवि संस्कृत श्लोक देने का मोह छोड़ नहीं पाता वहां, नरपति नाल्ह ऐसा नहीं करता। हां, एक स्थल पर संस्कृत के प्रसिद्ध कवियों यथा कालिदास, माघ आदि के नाम जरूर लेता है। ऐसा तो संस्कृत का न जानने वाला कवि भी बहुश्रुत होने के कारण लिख सकता है। फिर यह अंश भी सभी प्रतियों में नहीं मिलता। भाषा के स्वरुप को देखते हुए डॉ० रामकुमार वर्मा ने कहा है—वीसलदेव रासो का व्याकरण अपभ्रंश के नियमों का पालन कर रहा है। कारक, क्रियाओं और संज्ञाओं के रूप अपभ्रंश भाषा के ही हैं[4]। वीसलदे रासो' की भाषा की प्रवृत्ति यदि दूसरे शब्दों में कही जाय तो तद्भव की ओर है देश्य की ओर है। वीसलदे रासो में गद्य का अभाव है। गुजराती कवि की उपासना संबंधी विस्तृत जानकारी वीसलदेव की उड़ीसा यात्रा और जगन्नाथ पूजा वर्णन में

---

[4] डा० रामकुमार वर्मा— हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ १४६

अवश्य प्रदर्शित होती है। मध्यकालीन कवि अपने पांण्डित्य - प्रदर्शन के ऐसे उपयुक्त अवसर को कैसे छोड़ सकता है? उस समय कवि कर्म के एक अति आवश्यक अङ्ग के रुप में इस प्रवृत्ति ने जोर पकड़ लिया था, जिसका विकास हमें रीतिकालीन, वीर गाथा कालीन कवियों के वर्णन में प्रयुक्त दीर्घ सूचियों से मिलता है। ये सब सकेत गुजराती कवि नरपति और वीसलदेव रासो के रचयिता नरपति नाल्ह में भिन्नत्व स्थापित करते हैं। मेनारियाजी की यह स्थापना कि मूलतः यह गुजराती रचना थी, किसी ने उसे राजस्थानी रङ्ग दे दिया, वैज्ञानिक नहीं है— यह केवल अनुमान पर आधारित है। ग्रन्थ में पाये जाने वाले स्थानों, शहरों, पात्रों सभी के नाम राजस्थानी हैं। यदि यह कृति गुजराति कवि नरपति की होती तो इसमें मालवा का भी कुछ उल्लेख होना ही चाहिये था, अस्तु।

नरपति नाल्ह ने 'बेतुकी तुकबन्दी करके काव्य का ढाँचा येनकेन प्रकारेण खड़ा कर दिया है— साधारण कवि आदि मूल्यांकण जहां हम में उसके प्रति अवज्ञा पैदा करते हैं, वहीं उन्हीं विद्वान की निम्न पक्तियाँ उसे एक साधारण के स्थान पर अच्छा, उसकी 'बेतुकी तुकबंदी को' रससिक्त काव्य' बना देती हैं। विरह के स्वाभाविक चित्रण संयोग और विप्रलम्भ शृंगार की सफल उदभावना और साथ ही प्रकृति के रम्यचित्रों से परिपूर्ण होने के कारण यह काव्य पाठको को रसासिक्त करता रहेगा। इसमें संदेह नहीं। इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विविध घटनाओं के वर्णन के रहते हुये भी इस काव्य में इति वृत्तात्मकता नहीं आने पाई है। कहीं कहीं तो नरपति नाल्ह ने ऐसा कारुणिक और मर्मस्पर्शी - चित्र प्रस्तुत किये हैं कि पाठक रसविभोर हुये बिना नहीं रह सकता।[5]' अतः ऐसी परस्पर अन्तर्विरोधी आलोचनाओं के द्वारा कवि के साथ न्याय की आशा रखना व्यर्थ है। वीसलदेव रासो पर काव्य की दृष्टि से सम्यक आलोचना नहीं हो पाई है, यदि अवसर मिला तो इस ओर फिर कभी यत्न करेंगे।

[5] उदयनारायण तिवारी— वीर काव्य पृष्ठ, २०६

मेरी धारणा है कि वीसलदेव रासो के संबंध में नाहटाजी की मान्यतायें ज्यादा तर्क संगत हैं। रासो को उसका यह स्वरुप अवश्य ही चौदहवीं शती के अन्त तक मिल गया था। इस आधार पर भी नरपति नाल्ह गुजरात के कवि नरपति से भिन्न ठहराता है। फिर भी कवि के जन्म, मरण, शिक्षा दीक्षा तथा जीवन के संबंध में हम अभी तक अंधेरे में ही हैं और निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते।

वीसलदे रासो

प्रणमूं हणुमन्त अँजनी-पूत ।
भूल्यो आषर आणज्यो सूत ॥
कर जोड़े 'नरपति' कहै ।
धार थी आवज्यो भोज नरेस ॥
मात पिता मेलावड़ौ ।
सांभरयो रास होई पुण्य प्रवेस ॥१॥
राना-दे मीलियो सूरिज भरतार ।
रूकमीणी मीलियो कृष्ण आधार ॥
चन्द्र मील्यौ ज्युं रोहणी ।
'नाल्ह' रसायण नर भणइ ॥
राणी मिलीय राइ नरयन्द्र ॥२॥
गढ़ अजमेरां उतीम ठाई ।
राज करइ बीसल-दे-राई ॥
चउरास्या जेकइ अति घणां ।
राज कुँवर आव्या सब कोई ॥
भीतरते राजा तरागैं ।
मान अधिक दीया सब कोई ॥३॥
बोलइ वीसल-दे-परधान ।
राय-कुँवर आपौ बहु -मान ॥
राज कुँवर ते ।विंयौ ।
पाट पटोला कुलह कबाई ॥

दीधो सोनो सोलहो ।
चीत्रकोट दीधो तिण ढ़ाई ॥४॥
राय कुँवर बंध्यो सिर मोड़ ।
बारा गढ़ सुदुरग चित्तोड़ ॥
राइ भतीजो थापीयौ ।
गढ़ अजमेरां उत्तिम' ठाँय ॥
कर जोडे 'नरपति' कहइ ।
राज करइ तिहां बीसल राय ॥५॥
कुंवर संतोष्यो मनि हरषीयौ राई ।
धार नग्री बधाउ जाई ॥
तेड़ो प्रोहित राव कौ ।
चीरी लीखी आप छइ हाथ ॥
'धार नग्री थे गम करो ।
राजा भोज ले आवज्यो साथ ॥६॥
आईस दीधौ बीसल-राई ।
प्रोहित मोकलाव्यो तीणी ठाई ॥
लै मौहुरत दूज चालीयो ।
टका बीस दीयो छइ राई ॥
बाटइ भीख्या जिण करउ ।
पवन वेग तीण थानीक जाई ॥७॥
चाल्यो प्रोहित मालगिर देस ।
वस्त्र कंषवर अरि भला वेस ॥
हाथ कमण्डल झलमलाई ।
ब्रह्माण बेद भणइ झूणकार ॥

राति दिवस करि चालीयउ ।
पनरमइ दिवस पहुतो तिणी ठार
कोट कोसीसा नयर विसाल ।
धार नग्री माहइ गम कीयउ ॥८॥
नयर नीरूपम रूवड़ो ।
सरव सोनारौ पोल पगार ॥
माथइ तिलक केसरी तणौं ।
जाई पहुचो सीहँ दुवार ॥६॥

ब्राह्मण राज कीयउ प्रवेस ।
लेइ वीजोरो दूज मील्यो हो नरेस ॥
राज जमाई-घरि आवीयउ ।
उठयो राई गयो रणिवास ॥
अंतेवर सहू कोकियो ।
राजमती की पूरी आस ॥१०॥

आयौ राजा सांभल्यौं राई ।
ततखिण बल्यउ नीसाणे घाव ।
राजा माहइ उछव हूवउ ॥
ब्रह्मण दीयउ बहुत पसाव ॥
जीण संजोगी सुणावीयउ ।
सुणी बचन हरष्यो मनि राव ॥११॥

राजा भोज बोलइ तिणी ठाई ।
'देस बेसांस तेड़ावौ राई ॥

तेरह पोहण दल मिला ।
बाजइ पटह पखावज भेर ॥
असी सहस्त्र हाथी गुड्या ।
भाण न सूजइ उठी रज रेण ॥१२॥
वाजइ पड़ह पखावज पूर ।
ढ़ोल निसाण वाजइ रिणतुर ॥
वीर घंटा तिहां रूणरझूणइ ।
मेघाडम्बर छत्र सिर दीयो राय ॥
अन्तर वासउ हो दियो मिलाण ॥१३॥
दिरुग चित्तोड़ संसोभित ठाई ।
ततषीण राय पहुंतो जाई ॥
ठाम ठाम डेरा हुवा ।
भोजन भगति करई तीणीवार ॥
साथे चालइ राव को ।
गढ़ अजमेर पहुँतो जाइ ॥१४॥
चिहु खंडा का मीलीया छइ राय ।
गढ़ अजमेर पहुँतो जाई ॥
आगइ प्रोहीत चालीयउ ।
जाई उभो रह्यो सिंह–दुवार ॥
राजमती देइ वधामणी ।
आयो राजा भोज पमार ॥१५॥
राजा भोज आयो तीणी ठाई ।
साम हो आयौं छै बीसल–राई ॥

गढ़ अजमेरो राजीयौ ।
राजा भोज नै बीसल–राई ॥
दोई राजा मेलावड़ौ ।
राजा भोज चल्यो गढ़ मांहिं ॥१६॥
राजा भोज आयो तीणी ठाई ।
राजमती हरषी मन मांहीं ॥
कुँवर मीलइ जाई बाप हई ।
लेइ उछंगति भोज कुँवार ॥
कुसले पुत्री हे मील्या ।
आज जनम राजा सफल संसार ॥१७॥
घणी भगति करइ साभरयो–राव ।
पाट पटोला कुलह कबाई ॥
उल्हण मीणा सौ परव्यो ।
भोजन भगति करइ तिणां ठाई ॥
कर जोड़े 'नरपति' कहई ।
राजामती मुकलावउ राय ॥१८॥
भोज कुँवर मुकलावी राय ।
आंतर वासो दीयौ तीणी ठाई ॥
मान अधिक तीहां आपीयो ।
कुँवर वउलावी बीसल–राव ॥
राइ कुलामै बाहुड्या ।
जाइ मिलाण दीयो तिणी ठाई ॥१६॥

राजमती लै आव्यो राई ।
देस मालागिर सेन पठाई ॥
थांणो आयौ राव आपणौ ।
घरि घरि तोरण मङ्गल चार ॥
घरि घरि गुड़ि उछली ।
हुवउ वधावउ नगरी धार ॥२०॥
कुँवर गई अंतेवर मांहि ।
पाट—महा—दे राणी मीले छै भाई ॥
अंतेवर सहू को मीलई ।
मील्या सहोवर भोज कुमार ॥
नयण ते आंसू खेरीया ।
राजमती मीली तिणवार ॥२१॥
अंतेवर मांहीं रमइ राज—कुमार ।
दुख सुख माइ पूछइ तीणी वार ॥
'कही पुत्री ! राई किम गयउ ?
रंग भरी रयणी मांडीयो खेल ॥
'अही—वीषजी मैं मौ बसई ।
एके वचन थी चाल्यो मेल्ही ॥२२॥
श्रावण मास सुहावणो होई ।
सखी सहेली खेलै सब कोई ॥
कुँवर रमई राजा भोज की !
पेहलई श्रावण खेलावा जाई ॥

सही सयाणी सब मीली ।
'कहि कुँवर ! कीसौ बीसल-राई ॥२३॥
राई भलो जीसो पून्यमचंद ।
गोकुल मांही सोहै ज्युँ गोव्यंद ॥
ईसो राजा सांभरी तणौ ।
राय मुकुट राया सिरअंग ॥
चउरस्या जै के उलगै ।
राई वदन जिसौ पूरणचंद ॥२४॥
आसोज मास सुहावण होई ।
घरि घरि पूज करई सब कोई ॥
पूजी देव्या मनी हरीखीयौ ।
बहु मादल बाजइ तिणी ठाई ॥
दीवल्याँ कई आगही ।
धूरी दहरावै चोल्यो राव ॥२५॥
धूरी दसरावै चाल्यो राव ।
वाजित्र बाजइ निसांणाँ घाव ॥
चोरास्या सहू आवीया ।
सात सै हाथी मत-गयंद ॥
असी सहस सांहण मीले ।
राइ दिसइ जीसौ पून्यचंद ॥२६॥
मिल्या चौरास्या रांणौ राण ।
जाइ बघरइ दीयो मेल्हाण ॥
ठि अजमेरां राजीयो ।

घाडचर सिर छत्र दीयो राई ॥
काट विडद तिहां उचरै ।
'धनि धनि हो वीसल चहुँवाण ॥२७॥
चाल्यो राई दीयौ बहुमान ।
काथ सुपारी पाका पान ॥
वलणे चाल्यो राई आपणांइ ।
हीयडइ हरिख मनि रंग अपार ॥
सूभट सेन्या राज तणी ।
जाई पहुँतो मराडव धार ॥२८॥
धार नयरी [पहुंतो] वीसल-राव ।
सांमहो आव्यो भोज खधार ॥
कुसल रस प्रसन हुवा ।
दासी दी कोला मीली तिणि ठाई ॥
नयर-लोक सहूँ को मील्यो ।
जाई जहुणो बीसल राव ॥२९॥
धन जननी जिणजायो बीसलराव ।
बीसल समो नवि कोई भौवाल ॥
रूप अपूरव पेखीयो ।
लावण लांडु अरी पकवान ॥
सेना सहित राज जीमीयौ ।
राई भतीजो भोज दे बहुमान ॥३०॥
राजा भोज बोलइ तिणी ठाई ।
'पाटी बैठाडया बीसल-राई ॥

गढ़ अजमेरां राजीयौ ।
माणिक मौती चोक पुराई ॥
दीया खरोदक पइहरणइ ।
राजा कुँवर बेसांणी आणी ॥
मोती का अखा किया ।
अंतेवर महुँ जोवइ छइ राई ॥३१॥

★

कल्लोल

●●

['ढोला-मारु रा दूहा' को यदि राजस्थान के सर्वोत्तम जातीय काव्यों में से एक कहा जाय तो कोई असंगति नहीं। कविता की सफलता उसकी भाव प्रवणता और मानस प्रक्षालन-क्षमता में है, इस दृष्टि से यह एक श्रेष्ठ कृति मानी जा सकती है।]

कल्लोल

●●

प्रसिद्ध अमेरिकन-चिन्तक एमरसन का कथन है कि "महान व्यक्तियों का जीवन चरित्र प्रायः संक्षिप्त ही होता है। उनका वास्तविक जीवन तो उनकी कृतियों में निहित रहता है।" कितने आश्चर्य की बात है कि हम प्रायः संसार के सभी महा-पुरुषों के सम्बन्ध में बहुत सीमित ज्ञान रखते हैं। उनका सच्चा जीवन तो उनके कृतित्व में छिपा रहता है और वही विश्व का मार्ग-प्रदर्शक बनता है। हमारे चरित नायक के सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं जानते। इसमें आश्चर्य क्या है? एलोरा के कैलाश मन्दिर के शिल्पकार और अजन्ता के चित्रकार को भला कौन जानता है? उनके जन्म-मरण और जीवन-इतिवृत्त को न जानते हुए भी वे हमारे लिये चिर परिचित हैं। भारतीय संस्कृति के अनन्य साधक वे कलाकार विस्मृत होने पर भी अतीत की गर्द के नीचे से अपने व्यक्तित्व की झांकी दिखा देते हैं। इसी प्रकार राजस्थानी प्रेमाख्यान 'ढोला-मारू रा दूहा' का रचयिता हम से पूर्ण अपरिचित होने पर हमारे बहुत निकट है। उसने राजस्थान की धड़कन को समझा है, जीवन की गहराइयों में डूबकर हमें अपूर्व उल्लास प्रदान किया है, और 'लोकगाथा' का रचयिता बनकर 'लोकगीत' के स्थान पर 'क्लेसिक' दे गया है। राजस्थान की लोक-मनसा पर आज भी उसका आख्यान शासन करता है, युग युग से उसकी कथा चित्रकार को प्रेरणा देती आई है, वर्षों से जनकवि और जनगायक इसी कथानक को अपने ढंग से साधते रहे हैं।

कुछ विद्वान 'ढोला-मारू रा दोहा' नामक काव्य के रचयिता के रूप में 'कल्लोल' को ग्रहण करने के लिये तत्पर नहीं हैं। उनकी धारणा में 'कल्लोल' नामक कवि शायद ही हुआ हो[1]। वहां दूसरी ओर डॉ० मोतीलाल मेनारिया

---

१. ठा० रामसिंह, सूर्यकरण पारीक, नरोत्तम स्वामी—'ढोला-मारू रा दूहा' भूमिका, पृष्ठ, २८।

इस काव्य के रचयिता को 'कल्लोल' नाम से स्वीकार करते हैं[2]। 'ढोला-मारू रा दूहा' के सम्पादक तो यहां तक मानते हैं, कि यह किसी एक कवि की कृति नहीं है—'कल्लोल' की कवि-रूप में कल्पना करना अनुचित है। किन्तु मेनारिया जी निम्न दोहे की साक्षी पर इस लोकप्रिय काव्य के कर्ता को 'कल्लोल' ठहराते हैं।

गाहा गूढा गीत रस,
कवित कथा कल्लौल।
चतुर-तणा मन रीझवै,
कहिया कवि कल्लौल॥

मेरी तो निश्चित मान्यता है; चाहे हम इस ग्रन्थ को 'कल्लोल' रचित माने या न माने, किन्तु इसे किसी कवि की रचना तो मानना ही होगा। 'ढोला-मारू रा दूहा' में अनेक लोकगीत-परम्पराओं और लोकवार्ता की विशेषताओं का पालन हुआ है, किन्तु केवल इसी आधार पर हम इसे किसी कवि की कृति होने से रोक नहीं सकते। यह आधार इतना लचर है कि इसे सही मान लेने पर हमें समूचे सूफी प्रेमाख्यानों को भी किसी कवि द्वारा रचित मानने से इन्कार करना पड़ेगा। ऐसा करना कितनी भयंकर भूल होगी, इसे समझा जा सकता है और फिर कालान्तर में ऐसी भूल का परिमार्जन होना भी दुष्कर हो जाता है। 'ढोला-मारू रा दूहा' के विद्वान सम्पादकों के अनुसार 'ढोला-मारू की प्रेम गाथा को किसी व्यक्ति विशेष की कृति न मान कर भी हमको यह कल्पना करने में कठिनाई नहीं होती कि यह काव्य मौखिक परम्परा के प्राचीन काव्य-युग की एक विशेष कृति है—और अन्त में मौखिक परम्परा से चला आता हुआ यह काव्य हमको किसी विशेष कवि की कृति के रूप में नहीं मिला, बल्कि जनता के काव्य के रूप में उपलब्ध हुआ है और अपनी मान्यता की उन्होंने बड़े सुन्दर ढंग से तर्क संगत व्याख्या की है। 'ढोला-मारू रा दूहा' मौखिक

---

२. मोतीलाल मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य पृष्ठ १०१।

परम्परा में होने मात्र से लोकगीत परम्परा में नहीं आ जाते। जायसी के पद्मावत को फकीर गाते फिरते थे और नागमती के विरहवर्णन को एक भिखारी से सुन कर ही अमेठी के राजा ने जायसी को सम्मान दिया था। अतः वियोग वर्णन अथवा बारह मासा को आसानी से मौखिक परम्परा के अन्तर्गत माना जा सकता है। पर इससे कैसे इन्कार किया जा सकता है कि वह एक कवि विशेष की कृति नहीं है ? ठीक इसी प्रकार 'ढोला-मारू रा दूहा' को किसी विशेष कवि की कृति न मानना सरासर अन्याय है। अतः हम इस प्रसिद्ध काव्य के रचयिता के रूप में 'कल्लोल' को ही सम्मान देंगे।

कवि 'कल्लोल' स्वयं बड़ा गुणी था, वह साहित्य-शास्त्र को भली प्रकार समझता था और अपने समय से पहले की साहित्यिक रचनाओं से परिचित था। साहित्यिक परम्पराओं व अपभ्रंश-प्राकृत कविताधारा का उसने भली प्रकार अवगाहन किया था। उसकी रचनाओं में हमें कुछ ऐसी रूढ़ियाँ मिलती हैं, जो एक ओर कवि की साहित्यिक परम्परा-प्रवीणता की उद्घोषणा करती हैं और उसे अपभ्रंश-काव्य पद्धति से पूर्ण परिचित सिद्ध करती हैं, वहां दूसरी ओर उसे लोकमानस में अप्रतिम स्थान दिलाने की योजना करती है। यही कारण है कि 'ढोला-मारू रा दूहा' कुशल कवि के काव्य-कौशल से जहाँ एक ओर 'लोकवार्ता' से अभिन्नता स्थापित करने का यत्न करता है, वहां दूसरी ओर शास्त्रीय काव्यों की अनेक बातों में बराबरी करता है। जान पड़ता है कि कवि का साहित्यिक अध्ययन गहरा था। उसने प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश व देश्यभाषा साहित्य की भावना को भली प्रकार समझा था। कवि के अनेक उपमान मौलिक होते हुये भी परम्परा के तर्कसंगत विकास के रूप में किये जा सकते हैं। कवि ने अनेक स्थलों पर कवि समयों व काव्य प्रसिद्धियों का प्रयोग किया है, जो इस के सुशिक्षित व काव्य-कला प्रवीण होने का परिचायक है। अपनी मान्यता की दृष्टि में निम्न दोहे विचारार्थ प्रस्तुत कर रहा हूं—

मारवणी इम बीनवइ,
घनी आजूणी रति।

गाहा—गूढ़ा—गीत—गुण ,
लहि का नवली वति ॥
गाहा—गीत—विनोद रस ,
सगुणां दीह लियंति ।
कई निद्रा, कइ कलह करि,
मूरखि दीह गमंति ॥

'मारवणी ढोला से यों विनय करती है कि आज की रात धन्य है। आज कोई गाथा या पहेली, गीत या गुणोक्ति, या कोई नवीन कथा कहिये क्योंकि गुणवान् मनुष्यों के दिन गाथा, गीत और विनोद के रस में बीतते हैं और मूर्ख या तो नींद में या कलह में दिन बिताते हैं। काव्य विनोदों से समय बिताने की कल्पना कोई नई नहीं है। कादम्बरी से लेकर अपभ्रंश-काव्यों तक इस परम्परा के दर्शन होते हैं[3]। अतः कल्लोल द्वारा रचित ये दो दोहे उसको सुशिक्षित, काव्य शास्त्र का ज्ञानी और परम्पराओं का सजग प्रहरी सिद्ध कर देते हैं। कल्लोल मध्ययुगीन व्यवस्था का द्योतक है और इसीलिये जीवन के विस्तृत क्षेत्र को काव्य-विषय के रूप में चुनकर भी उसने थोड़े प्रसंगों पर लिखा। उसे वर्ण्य वस्तु को सरस बनाना आता था। अतः प्रसंगों को चित्रित करने पर भी वह जीवन और विषय वस्तु के साथ न्याय कर सका। 'ऋतुवर्णन' की अपनाई गई परिपाटी भी उसकी कविता को निष्प्राण नहीं बना सकी। 'कल्लोल' कविता के अभावों व उपलब्धियों से परिचित था। अतः वह अनेक दोषों को बचा गया और अनेक विशेषताओं को अपनी कविता में गूंथ गया। उसने वर्णन के फेर में पड़ कर तत्कालीन कवियों की भांति वस्तुओं की दीर्घ सूचियों का प्रणयन नहीं किया। मानव के दुख-सुख, प्रेम-घृणा, व्यंग-विनोद, सह-योग-विरह, अनुराग-जलन, भावुकता-कर्तव्य, रोष-दया, आदि अनेक भावनाओं की अभिव्यक्ति कवि की सबसे बड़ी विशेषता है। इसी लिये 'ढोला-

---

३. हजारी प्रसाद द्विवेदी-साहित्य का मर्म पृष्ठ ११।

मारू रा दूहा' भाव प्रवणता, सरसता और मार्मिकता आदि अपने विशिष्ट गुणों के कारण जन जीवन में उच्चासन पा सके हैं। सैकड़ों व्यक्तियों की जिव्हा पर आज भी ये दोहे आसीन हैं।

कल्लोल की रूझान अपने युग के अनुरूप ही शृंगार की ओर रही और इसीसे उसकी लेखनी से एक प्रेमाख्यान की उत्पत्ति हुई। कवि बहुत विदग्ध, भावुक और कल्पना पटु था, पर उसमें शालीनता और मर्यादा की कमी नहीं थी। जीवन के प्रति वह विशुद्ध रोमांटिक दृष्टिकोण लेकर कभी नहीं चला। उसने कल्पना, में और यथार्थ में सदैव उचित सन्तुलन रखा, आदर्श और अनुदान में आवश्यक समन्वय किया और काव्य-रूढ़ियों और जन-साहित्य को समान रूप से ग्रहण किया। कल्लोल केवल काव्य कला में ही निपुण नहीं था, वह जन-जीवन से परिचित भी था केवल कल्पना लोक में नक्षत्र-नीड़ की रचना कर कविता-कामिनी का आव्हान करने वाला कवि वह नहीं था। वह तो राजस्थान के जन-जीवन से पूर्णतया घुला मिला हुआ है। उसके जन-सम्पर्क ने उसे अद्भुत अन्तर्दृष्टि दी, जिसके फलस्वरूप उसका काव्य राजस्थान का जातीय काव्य बन गया है। स्थानीय परिस्थितियां, भौगोलिक स्थिति राजस्थानी जीवन की महानता, मानव स्वभाव की यथार्थता, देशकाल, वातावरण और सबसे बढ़ कर प्रभाव-ऐक्य ने उसकी कविता को सर्वग्राह्य बना दिया है। कल्लोल निसंदेह राजस्थानी का सबसे अधिक लोकप्रिय कवि है। उसने अनेक कवियों को प्रभावित किया है। उसकी कथा को आधार बना कर अनेक चित्र-मालायें तैयार की गई हैं। अनेक लोकगीत गायकों ने 'ढोला-मारू' के गीत युग युग से गाये हैं। यहां तक कि शिल्पकारों ने 'ढोला-मारू' की मूर्तियां तक गढ़ी है। राजस्थानी वातावरण की जीवित झांकी हमें 'ढोला-मारू रा दूहा' में मिल जाती है।

कवि की रमणीय उद्भावनाओं और मौलिक कल्पनाओं, यौवन सुलभ भावुकता और भारतीय मर्यादा सबने मिल कर 'ढोला-मारवण' को 'शशि पुन्नु' लैला मजनू 'शिरी फरहाद' जैसी प्रेम कहानियों के बीच बैठा दिया है पर गम्भी-

रता और मर्यादा की दृष्टि से 'ढोला-मारू' सबसे श्रेष्ठ है, सबसे उदात्त है। जब तक मानव रहेगा, उसके प्रेम-व्यापार और संवेदनायें रहेंगी, तब तक कवि 'कल्लोल' अपनी अमर कृति के लिये स्मरण किया जाता रहेगा।

शिक्षा का सागर, जीवन उजागर, कल्पना देश में विहार करने वाला, वास्तविकता का प्रेमी, रूढ़ि-बद्ध होकर भी रूढ़ि-मुक्त, गम्भीरता का हिमायती, जन-जीवन से सार ग्रहण कर जनता को रिझाने वाला, सद्पथ-दर्शक, हाव-भाव व कार्य व्यापारों को समझने वाला कवि कल्लोल राजस्थानी साहित्य में अपना अद्वितीय स्थान रखता है।

★

ढोला मारू रा दूहा

(मारू का स्वप्न में पति दर्शन और विरहाकुलता)

जिम जिम मन अमले किअइ, तार चढंती जाइ ।
तिम तिम मारवणी-तणइ, तन तरणापउ थाइ ॥१॥
हंस चलण, कदलीह जँघ, कटि केहर जिम खीण ।
मुख सिसहर खंजर नयण, कुच श्रीफल, कँठ वीण ॥२॥
असइ आरखइ मारूवी सूती सेज विछाइ ।
साल्हकुँवर सुपनइँ मिल्यउ, जागि निसासउ खाइ ॥३॥
ऊलंबे सिर हथ्थड़ा, चाहंदी रस-लुध्ध ।
विरह-महाघण ऊमट्यउ, थाह निहालइ मुध्ध ॥४॥
उक्कंबी सिर हथ्थड़ा, चाहंती रस-लुध्ध ।
ऊँची चढ़ि चातृङ्गि जिउँ मागि निहालइ मुध्ध ॥५॥
थाह निहालइ, दिन गिणइ, मारू आसा लुध्ध ।
पर देसे घाँघल घणा, विखउ न जाणइ मुध्ध ॥६॥
ऊनमियऊ उत्तर दिसइँ, गाज्यउ गुहिर गँभीर ।
मारवणी प्रिउ संभर यउ, नयणे बूठउ नीर ॥७॥
मारू नूँ आखइ सखी आज स काँइ उदास ।
काँम-चित्रांम जु दिठ्ठ मइँ, रूप न भूलइ तास ॥८॥
अम्हाँ मन अचरिज भयउ, सखियाँ आखइ एम ।
तइँ अण दिट्ठा सज्जणाँ किउँ करि लग्गा पेम ॥९॥
जे जीवण तिन्हाँ तणा तन ही माँहि वसंत ।
धारइ दूध पयोहरे बालक किम काढंत ॥१०॥

ससनेही समदाँ परइ वसत हिया मंझार ।
कुसनेही घर आँगणई, जाँण समँदाँ पार ॥११॥

सखि ए सज्जण वल्लहा, जइ अणदिट्ठा तोइ ।
खिग खिण अंतर संभरइ, नहीं विसारइ सोइ ॥१२॥

मारू नूँ आखइ सखी, एह हमारी बुझ्झ ।
साल्ह कुँवर सुहिणइ मिल्यउ, सुंदरि, सउवर तुझ्झ ॥१३॥

सखी-वयण सुंदरि सुण्या, उठी मदन की झाल ।
सुंदरिनूँ सुज्जण-विरह, ऊपन्नउ ततकाल ॥१४॥

हे सखिए, परदेस प्री, तनह न जावइ ताप ।
बाबहियउ आसाढ जिम, विरहणि करइ विलाप ॥१५॥

बाबहियउ नइ विरहणी, दुहुवां एक सहाव ।
जब ही बरसइ घण घणउ, तब ही कहइ प्रियाव ॥१६॥

बाबहिया, चढ़ि गउरख सिरि, चढ़ि ऊँचइ री भीत ।
मत ही साहिब बाहुड़इ, कउ गुण आवइ चीत ॥१७॥

बाबहिया, चढ़ि डूंगरे, चढ़ि ऊँचइ री पाज ।
मत ही साहिब बाहुड़इ, सुणि मेहाँकी गाज ॥१८॥

सोरठा

बाबहिया, तूँ चोर, थारी चांच कटाविसूँ ।
रातिज दीन्हीं सोर, मइँ जाण्यउ प्री आवियउ ॥१९॥

दूहा

बाबहिया निल-पंखिया, मगरि ज काली रेह ।
मति पावस सुणि विरहणी, तलफि तलफि जिउ देह ॥२०॥

बाबहिया तर पङ्खिया, तइँ किउँ दीन्ही लोर ।
मइँ जाण्यउ प्रिउ आवियउ, ससहर चंद चकोर ॥२१॥
बाबहिया निल-पङ्खिया, बाड़त दइ दइ लूण ।
प्रिउ मेरा मइँ प्रिउ की, तूँ प्रिउ कहइ स कूण ॥२२॥
बाबहिया रत्त-पङ्खिया, बोलइ मधुरी बांणि ।
काइ लवंतउ माठि करि, परदेसी प्रिउ आंणि ॥२३॥
बाबहिया प्रिउ प्रिउ न कहि, पिउ को नाम न लेह ।
काइक जागइ विरहणी, प्रीउ कह्यां जिउ देह ॥२४॥
बाबहिया डूँगर-दहण, छाँडि हमारउ गांम ।
सारी रात पुकारियउ, लइ लइ प्रिउ कउ नाम ॥२५॥
चहुँ दिस दामिनि सघन घन, पीउ तजी तिण वार ।
मारू मर चातग भए, पिउ पिउ करत पुकार ॥२६॥
पावस आयउ साहिबा, बोलर लागा मोर ।
कंता तूँ घरि आव नवि, जोबन कीधउ जोर ॥२७॥
गिरिवर मोर गहक्किया, तरवर मँक्या पात ।
धणियां धण सालण रगा, वूठैतौ बरसात ॥२८॥
राजा, परजा, गुणिय-जण, कवि-जण, पण्डित पात ।
सगलाँ मन ऊछव हुअउ, वूठैतो बरसात ॥२६॥
ऊनमि आई बद्दली, ढोलउ आयउ चित्त ।
यो बरसइ रितु आपणी, नइण हमारे नित्त ॥३०॥
ऊनमियउ उत्तर दिसइँ, मेड़ी ऊपर मेह ।
ते विरहिणि किम जीवसे, ज्यांरा दूर सनेह ॥३१॥

ऊनमियउ उत्तर दिसइँ, काली कंठलि मेह ।
हूँ भीजूँ घर-अँगणइ, पिउ भीजई पर देह ॥३२॥
बीजुलियाँ चहलावहलि, आभइ आभइ एक ।
कदी मिलूँ उण साहिबा, कर काजल की रेख ॥३३॥
बीजुलियाँ चहलावहलि, आभइ आभइ च्यारि ।
कद रे मिलउँली सज्जना लाँबी बाँह पसारि ॥३४॥
बिजुलियाँ चहलावहलि, आभय आभय कोडि ।
कद रे मिलउँली सज्जना, कस कंचूकी छोडि ॥३५॥
गिरहू पखालण सर भरण, नदी हिंडोलण हारि ।
सूती सेजइँ एकली, हइ हइ दइव म मारि ॥३६॥
दादुर-मोर टबक्क घण, वीजलड़ी तरवारि ।
सूती सेजइँ एकली, हइ हइ दइव म मारि ॥३७॥
जल थल थल जल हुइ रह्यउ, बोलइ मोर किंगार ।
स्रावण दूभर हे सखी, किहाँ मुझ प्राण-अधार ॥३८॥
बिज्जुलियाँ नीलज्जियाँ, जलहर तूँ ही लज्जि ।
सूनी सेज, विदेस प्रिय, मधुरइ मधुरइ गज्जि ॥३९॥
राति सखी इणि ताल मइँ, काइ ज कुरली पङ्खि ।
उवै सरि, हूँ घरि आपणइ, बिहूँ न मेली अङ्खि ॥४०॥
ए सारस कहिजइ, पसू पङ्खी केरा राव ।
उवै बोल्या सर ऊपरइ, थाँ कीधी अणुराव ॥४१॥
राति जु सारस कुरलिया, गुंजि रहे सब ताल ।
जिण की जोड़ी बीछड़ी, तिणका कवण हवाल ॥४२॥

कूँझड़ियाँ कलरव कियउ, धरि पाछिले वणेहि ।
सूतीं साजण संभर्‌या, द्रह भरिया नयणे हि ॥४३॥
कूँझड़ियाँ कलरव कियउ, धरि पाछिले दरङ्गि ।
सूती साजण संभर्‌या, करवत वूही अङ्गि ॥४४॥
कूँझडियाँ कुरलाइयाँ, ओलइ बइसि करीर ।
सारहली जिउँ सद्धियाँ सज्जण मंझ सरीर ॥४५॥
मँझि समंदाँ वींट धर, जलसूँ जामोपत्त ।
किणहीं अवगुण कूँझड़ी, कुरली माँझिम रत्त ॥४६॥
कुँझड़ियाँ कलिअल कियउ, सुणी उ पड्डइ वाइ ।
ज्याँकी जोड़ी बीछड़ी, त्याँ निसि नींद न आइ ॥४७॥
कूँझड़ियाँ कलिअल कियउ, सरवर पइलइ तीर ।
निसिभरि सज्जण सल्लियाँ, नयणे वूहा नीर ॥४८॥

सोरठा

मारवणी मनि रंगि, वाटइ तिणि आवी वहइ ।
कुँझी एकणि संगि, ताबि चरंति दिट्ठियाँ ॥४९॥

दूहा

आड़ा डूँगर दूरि घर, वणइ न जाणइ भत्त ।
सज्जण-सन्दइ कारणइ, हियउ हिलूसइ नित्त ॥५०॥
कुंझा, धउ नइ पङ्खडी, थाकउ विनउ वहेसि ।
मायर लंघी प्री मिलउँ, प्री मिलि पाछि देसि ॥५१॥
म्हे कुरझाँ सरवर -तणा, पाँखाँ किणहिँ न देस ।
भरिया सर देखी रहाँ, उड आवेरि वहेस ॥५२॥

उत्तर दिसि उपराठियाँ, दक्षिण साँभहियाँह ।
कुरझाँ, एक सँदेसड़उ ढ़ोलानइ कहियाँह ॥५३॥
माणस हँवाँत मुख चवाँ, म्हे छाँ कूँझड़ियाँह ।
प्रिउ संदेसउ पाठविसु, लिखि दे पंखडियाँह ॥५४॥
पाँखे पाँणी थाहरइ, जलि काजल गहिलाइ ।
सयणाँ–तणाँ संदेसडा, मुख वचने कहवाइ ॥५५॥
तालि चरंति कुंझड़ी, सर संधियउ गँमार ।
कोइक आखर मनि बस्यउ, ऊडी पंख सँमार ॥५६॥
जिम जिम सज्जण–संभरइ , तिमातिम लग्गइ तीर ।
पंख हुअइ तो जाइ मिलि, मनाँ बँधाँड़ाँ धीर ॥५७॥
आडा डूँगर बन घणाँ, खरा पियारा मित्त ।
देह विधाता, पंखड़ी, मिलि मिलि आवउ नित्त ॥५८॥
आडा डूँगर, भुइघणी, सज्जण रहइ विदेस ।
माँगी ताँगी पंखुड़ी केती बार लहेस ॥५९॥
पाँखड़ियाँ ई किउं नहीं, दैव अनाडू ज्याँह ।
चकवी कइहइ पंखडी, रयणि न मेलउ त्याँह ॥६०॥
आडा डूँगर, भुइँ घणी, तियाँ मिलोजइ एम ।
मनि हूँ खिणाहि न मेल्हियइ, चकवी दिणियर जेम ॥६१॥
ज्यूँ ए डूँगर समुहा, त्यूँ जइ सज्जण हुंति ।
चंपावाड़ी भमर ज्यउँ, नवण लगाइ रहंति ॥६२॥
जिणी देसे सज्जण वसइ, तिणी दिसि वज्जउ वाउ ।
उआँ लगे मो लग्गसी, ऊही बाह पसाऊ ॥६३॥

कउआ, दिउँ वधाइयाँ, प्रीतम मेलइ मुज्झ ।
काढ़ि कलेजउ आपणउ, भोजन दिउँली तुज्झ ॥६४॥
जब सोऊँ तब जागवइ, जब जागूँ तब जाइ ।
मारू ढोलउ संभरइ, इणि परि रयण विहाइ ॥६५॥

ऋतु वर्णन

गउखे बइटा एकठा, मालवणी नइ ढोल ।
अम्बर दीठउ ऊनयउ, तिम संभा-यउ बोल ॥
पगि पगि पाँणी पन्थ सिर, ऊपरि अंबर-छांह ।
प्रावस प्रगट्यउ पदमणी, कहउत पूंगल जांह ॥
लागे साद सुहांमणउ, नस भर कुंभडियांह ।
जल पोइणिए छाइयउ, कहउत पूंगल जांह ॥
जिण रुति बग पावस लियउ, धरणि न मेल्हइ पाइ ।
तिण रुति साहिब वल्लहा, कोइ दिसावर जाइ ॥
जिण रुति बहु पावस झरइ, बाबहियउ बोलंत ।
तिण रुति साहिब वल्लहा, को मंदिर मेल्हंत ॥
प्रीतम कामणगारियां, थल थल बादलियांह ।
घण बरसंतइ सूकियां, लूसूं पांगुरियांह ॥
कप्पड़ जीण कमाण गुण, भीजइ सब हथियार ।
इण रुति साहिव ना चलइ, चालइ तिके गिमार ॥
बाजरियां हरियालियां, बिचि बिचि बेलां फूल ।
जउ भरि बूठउ भाद्रवउ, मारू देस अमूल ॥

धर नीलि, धण पुण्डरी, धरि गहगहइ गमार ।
मारू-देस सुहामणउ, सांवणि झांझी वार ॥
वाबहियउ पिउ पिउ करइ, कोयल सुरंगइ साद ।
प्रिय, तिण रुति आलिग रह्यां, ताह सुँ किसउ संवाद ॥
डूंगरिया हरिया हुया, वणे झिंगोर्‌या मोर ।
इणि रिति तीनइ नीसरइ, जाचक, चाकर, चोर ॥
चोर मन आलस करि रहइ, जाचक रहइ लुभाइ ।
राज्यंद, जे नर क्यउं रहइ, माल पराया खाइ ॥
फौज घटा, खग दांमणी, बूंद लगइ सर जेम ।
पावस पिउ विण वल्लहा, कहि जीवीजइ केम ॥
नदियां नाला नीझरण, पावस चढ़िया पूर ।
करिहउ कादिम तिलक स्यइ, पंथी पूंगल दूर ॥
अति घण ऊनिमि आवियउ, झाझी रिठि झड़वाइ ।
बग ही भला त बप्पड़ा, धरणि न मुक्कइ पाइ ॥
पावस-मास प्रगट्टिऊं, जागि आणंद विहाय ।
बग ही भला जु बापड़ा, धरण न न मेल्हइ पाय ॥
जिण रुति बहु बादल झरइ, नदियां नीर प्रवाह ।
तिण रुति साहिब वल्लहा, मो किम रयण विहाय ॥
सावण आयउ साहिबां, पगइ विलंबी गार ।
ब्रच्छ विलंबी बेलड्यां, नरां विलंबी नार ॥
पावस-मास प्रगट्टियउ, पगइ विलंबइ गारि ।
धण की आही वीनती, पावस पंथ निवारि ॥

आज धरा-दस ऊनम्यउ, काली घड़ सखराँह ।
उवा धण देसी ओलंबा, कर कर लांबीं बांह ॥
आज धरा-दस ऊनम्यउ, महलां ऊपर मेह ।
बाहर थाजइ ऊगरइ, भीगा मांझ घरेह ॥
ढोला, रहिसि निवारियउ, मिलिसि दई कइ लेखि ।
पूंगल हुइस ज प्राहुणउ, दसराहा लग देखि ॥
दसराहा लग भी रह्यउ, मालवणीरी प्रीत ।
वरिखा-रुति पाछी वली, आवी सरद सुचीत ॥
वयणे मालवणी-तणइ, रहियउ साल्हकुमार ।
प्रेमइ बंध्यउ प्री रहइ, जउ प्री चालणहार ॥
मालवणी, ढोलउ कहइ, हिव म्हां सीख करेह ।
ऊन्हालउ, बरखा विन्है, रहया तुझ सनेह ॥
सीयालउ तउ सी पड़इ, ऊन्हालइ लू वाइ ।
वरसालइ भुइं चीकणी, चालण रुत्ति न काइ ॥

★

पद्मनाभ

●●

['पद्मनाभ की कविता को पढ़ उत्साहशील हृदय उछले बिना नहीं रहता —दी. ब. केशवलाल हर्षदलाल ध्रुव]

पद्मनाभ

●●

'रास की परम्परागत आवश्यकताओं के अतिरिक्त पद्मनाभ सदा यथार्थवादी रहा। समसामयिक अनेक कवियों में से पद्मनाभ ही एक मात्र ऐसा कवि है जिसने घटनाओं और चरित्रों का इतना चतुराई से निर्माण किया है कि समग्रतः समूचा 'कान्हड दे प्रबन्ध' रुचिकर बन गया है। राजपूत एवं मुसलमान योद्धाओं का वर्णन वास्तविक और जीवन के अनुरूप है।' तत्कालीन समाज के चित्र, रसनिष्पत्ति, वर्णन-चातुर्य, प्रबन्धात्मकता और सामाजिक परिस्थितियों का यथातथ्य चित्रण, संयमित कल्पना, उचित काव्य रूढ़ियों व परम्पराओं का पालन किन्तु 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' का ध्यान आदि अनेक विशेषताओं के होने पर भी कवि 'पद्मनाभ' हिन्दी विद्वानों द्वारा उचित सम्मान न पा सका।

पद्मनाभ की एक मात्र कृति 'कान्हडदे प्रबन्ध' ही मिली है और उसके उद्धार का श्रेय भी प्रसिद्ध जर्मन विद्वान बूलर को ही है, जिन्होंने इसे एक जैन-भंडार से प्राप्त किया था। कवि के सम्बन्ध में अधिक जानकारी तो मिलती नहीं है किन्तु अन्तर्साक्ष्य के आधार पर निम्न बातें कही जा सकती हैं। पद्मनाभ विसनगर का नागर ब्राह्मण था और जालौर (मारवाड़) के एक राजपूत सामन्त अखैराज चौहान का आश्रित था। उसने संवत् १५१२ में अपने श्रेष्ट काव्य ग्रन्थ 'कान्हडदे प्रबन्ध' की रचना की। 'राजस्थानी ही नहीं हिन्दी के भी प्रारम्भिक युग के ग्रन्थों में कदाचित् ही कोई ऐसा माना जा सकता है जिसकी रचना तिथि इतनी निश्चित हो। इसी प्रकार इस ग्रन्थ का पाठ भी अपने मूल रूप में प्रायः सुरक्षित है और अपने युग की भाषा के अध्ययन के लिये एक दृढ़ आधार प्रस्तुत करता है।[1]

१. डॉ० माताप्रसाद गुप्त-आलोचना, भाग १४, पृष्ठ, ६४।

पद्मनाभ ने अपने आश्रयदाता अखैराज चौहान के पूर्वज जालौर नगर के शासक कान्हडदे के चरित व वीरता को लेकर अपने काव्य ग्रन्थ की रचना की। कान्हड़दे प्रबन्ध में विस्तार पूर्वक अल्लाउद्दीन खिलजी और उसके सेनापति अलफखाँ द्वारा गुजरात, काठियावाड़ व राजस्थान पर किये गये दुर्दान्त आक्रमण का वर्णन है। अन्हिलवाड़ से हिन्दू राज का अन्त और सोमनाथ के ज्योतिर्लिंग का उखेड़ना दो मुख्य ऐतिहासिक घटनायें हैं। जालौर के शासक कान्हडदे को जब इस धार्मिक अत्याचार का संवाद ज्ञात हुआ तो क्षत्रियोचित गुणों के अनुसार ही उसने मुसलमानी सेना का मुकाबला किया। बारह वर्ष के घेरे के बाद भी मुसलमानी सेना को सफलता न मिल सकी। अन्त में उन्होंने छल और अनीतिमूलक साधनों का आश्रय लिया। इस सब का वर्णन कवि ने बड़े शक्तिशाली ढंग से किया है। अनेक स्थान पर पाठक स्वयं कविता पढ़ते पढ़ते वीर भावना में उत्तेजित हो उठता है, यही कवि का रस कौशल है। शैली सीधी सादी है, अलंकार, विषय और वस्तु कविता के मर्म से बढ नहीं पाये, न अन्य राज्याश्रित कवियों की भांति पद्मनाभ ने चमत्कार और रूढि ग्रस्त परम्पराओं का ही प्रयोग किया है। कवि की अभिव्यक्ति जितनी सरल है उतनी ही प्रभावजनक और सशक्त भी। इतिहास की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य ग्रन्थ का महत्व काफी है। अतिरंजना के दोष से कवि सर्वत्र बच सका है जिससे प्रस्तुत कृति और भी अधिक विश्वस्त हो गई है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त की मान्यता है कि ग्रन्थकार उसी राजवंश से सम्बन्धित था जिसको ग्रन्थ के कथा-नायक ने पावन किया था। इस बात को संभावना यथेष्ट है कि उसको कथा की सामग्री उस राजवंश के लिखित और अलिखित इतिहासों से प्राप्त हुई हो। इसीलिये उस युग के इतिहास के अध्येता के लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त मूल्यवान होगा। यदि हम तत्कालीन समाज और भूगोल की विस्तृत और प्रामाणिक जानकारी चाहते हैं तो पद्मनाभ के 'कान्हडदे प्रबन्ध' को सबसे उपयोगी पायेंगे।

पद्मनाभ की प्रतिभा ने हमें दो अत्यन्त ही सजीव और विशिष्ट चरित्र दिये हैं—एक तो है कथानायक स्वयं कान्हड दे और दूसरी है शाहजादी

फिरोजा। दोनों पात्र अनेक दृष्टियों से विशेषता रखते हैं। अन्य वीर कथाओं अथच प्रबन्ध काव्यों के नायकों के प्रतिकूल कान्हडदे शृंगार से दूर है। वह समूचे हिन्दू समाज का त्राता जान पड़ता है। अलफखान ने सोमनाथ को तोड़ दिया और उसे वह गाड़ियों में लाद कर दिल्ली ले चला। प्रत्येक धर्मनिष्ट हिन्दू विचार कर उठा।

आगई रुद्र ! घणाई कोपानलि दैत्य सवे तिइं बाला।
तिइं प्रथवी मांही पुण्य वरतावीऊं देवलोकि भय टाल्या ॥
तिं बलकाक त्रिपुर विध्वंसिउ पवनवेगि जिम तूल।
पद्मनाभ पूछई सोमईया ! केथऊं करूं त्रिशूल ॥

हे रूद्र ! पहले तो तुमने अपनी कोधाग्नि में अनेक दैत्यों को जला दिया। संसार में पुण्य का प्रसार तुझी से है। भयातुर देवताओं को अभयदान तूने ही दिया, जिस तरह प्रभंजन रूई का नाश कर देता है उसी तरह तूने शक्तिशाली त्रिपुर राक्षस को नष्ट कर दिया। पद्मनाभ पूछता है कि हे सोमनाथ ! अब तेरे त्रिशूल को क्या हुआ ?

ऐसी विकट परिस्थितियों में कान्हडदे अपनी धर्म भावना से अनुप्राणित हो आगे बढ़ता है—मुसलमानों की सेना को मार भगाता है और उसी प्रस्तर खंड की नई मूर्तियाँ बनवा कर विभिन्न स्थानों में स्थापित करता है। यहाँ अन्य नायकों के समान किसी राजकुमारी के हरण के लिये 'कान्हडदे' नहीं बढ़ता किन्तु केवल रक्षा के लिये। उसके तेजस्वी उत्तर—जैसे कि पुरू ने सिकन्दर को दिये थे –सुन कर चित्त फड़क उठता है। आन पर मिटने वाला तेजस्वी, साहसी, उत्सर्गमय, कट्टर, टूटने को तैयार पर झुकने को तैयार नहीं, पराक्रमी, वचनपाल, उदार, सौजन्य, और निर्भीकता से व्यवहार करने वाला, कान्हड़दे अन्त में पराजित होता है। नष्ट हो जाता है किन्तु पाठक के मन में करुणा की एक टीस सी छोड़ जाता है। कान्हडदे एक पात्र विशेष है किन्तु वह सामान्य जनता की भावनाओं का सक्रिय प्रतीक है अतः वह सामान्य पात्र

भी है। सामूहिक हलचल का नेतृत्व करने वाला कान्हडदे परम्परा से सर्वथा भिन्न हाड-माँस का सजीव पात्र जान पड़ता है। तत्कालीन कवियों की कला से तुलना करने पर पद्मनाभ की सराहना किये बिना नहीं रहा जाता।

दूसरा चरित्र है फिरोजा का, जो अल्लाउद्दीन की पुत्री है और कान्हड-दे के पुत्र वीरमदे से प्रेम करती है। यहाँ कवि ने लोक कथाओं से पूर्वभव-सम्बन्ध का तत्व उठाया है और फिरोजा के प्रेम को शाश्वत, चिरपुरातन, जन्म-जन्मान्तर से माना है। यहाँ इतिहास की दृष्टि से असंगति जान पड़ती है। ऐतिहासिक काव्य की विशेषतायें यहाँ गौण हो उठती हैं और कथा लोक-कथा की तरह मोड़ ले लेती है। 'वस्तुतः इस देश में इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया।·········(हमारे काव्यों) में तथ्य और कल्पना का फेक्ट्स और फिक्शन का अद्भुत योग हुआ है। कर्मफल की अनिवार्यता में, दुर्भाग्य और सौभाग्य की अद्भुत शक्ति में और मनुष्य के अपूर्व शक्ति भण्डार होने में दृढ़ विश्वास ने इस देश के ऐतिहासिक तथ्यों को सदा काल्पनिक रंगों में रंगा है[1]। इस पृष्ट-भूमि में ही हम फिरोजा के चरित्र की उद्भावना को ठीक से समझ सकते हैं।

पद्मनाभ ने तत्कालीन लोक-प्रिय का यथा चौपाई, दूहा, सवैया, आदि का प्रयोग किया है। बीच में पांच भावुकता से लबालब गेय गीतों का भी सृजन किया है। दो स्थल पर गद्य का भी प्रयोग हुआ है। समग्रतः कहा जा सकता है कि कविता अभिव्यक्ति, इतिहास, भाषा सभी दृष्टि से 'कान्हड दे प्रबन्ध' एक महत्वपूर्ण कृति है और पद्मनाभ राजस्थानी के श्रेष्ट कवियों में से एक।

★

---

१. हजारीप्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृष्ट, ७१।

पद्मनाभ

कान्हडदे प्रबन्ध

दूहा

गौरीनन्दन वीनवूं, ब्रह्मसुता सरसत्ति;
सरस बन्ध प्राकृत कवूं, दिउ मुझ निर्मल मत्ति ॥१॥
आदि पुरूष अवतार धुरि यादवकुलि जयवंत ।
असुरवंस निकन्दीउ ते प्रणमूं श्रीकन्त ॥२॥
जिणि जमुनाजलि गाहीऊं, जिणि नाथीउ भुयङ्ग ।
वासुदेव धुरि वीनवूं, जिम पामूं मन रङ्ग ॥३॥
पद्मनाभ पण्डित सुकवि, वाणी वचन सुरङ्ग ।
कीरति सोनगिरा तणी, तिणी उच्चरी सुचङ्ग ॥४॥
जालहुर जगि जाणीइ, साततसी सुत जेह ।
तास तणा गुण वर्णवूं, कीरति कान्हडदेह ॥५॥
नवकोटी नामि भणूं, मारूं आडि घण देस ।
घण कण धरि सविऋद्धि तणे, कप्पडकणय सुवेस ॥६॥
कणयाचल जगि जाणीइ, ठाम तणु जाबालि ।
तहीं लगइ जगि जालहुर जण जम्पइ इणि कालि ॥७॥
कुलकीरति आगइ घणी, वंस बिशुद्ध वखाण ।
गजहंस रलीआमणां, सोनगिरा चहूँआण ॥८॥
कान्ह तणइ संपत्ति इसी, जिसी इन्द्रह धरि रिद्धि ।
सवे दिवसि वासु वसइ, राजभवनि नव निद्धि ॥९॥

प्रीति सहोदर स्यूं घणी, मालवदे मतिमन्त ।
कूंयर वीरमदे वली, जाणि जगि जयवंत ॥१०॥
राजनीति जाणइ घणी, रूपि सुहावि अङ्ग ।
राज करइ घरि आपणइ, चाहूँआण नवरङ्ग ॥११॥
हठ कीधु सुरताण स्यूं, तास कथा संबन्ध ।
चाहूँआण गुण वर्णवूं, पुहविं प्राकृत बन्ध ॥१२॥

जालौर वर्णन

वसइ नगर गिरि ऊपर घणूं, स्यूं वर्णवूं तल हट्टी तणूं ।
वेद पुराण शास्त्र अभ्यसइ, इस्या विप्र तिहां वासि वसइ ।
विद्यावाद विनोद अपार, वनय विवेक लहइ सु विचार ।
राजवंश वसइ छत्रीस, छन्नु गुण लक्षण बत्रीस ।
चाहुआण रा तेणइ ठाय, अबला विप्र मानीय गाय ।
छत्रीशइ दंडायुध धरइ, हीण कर्म नवि को आचरइ ।
च्यारि वर्ण उत्तम जाणीआ, विवहारिया वसइ वाणीआ ।
वुहुरिइ वीकिइ चालइ न्याइ, देसाउरि करइ विवसाइ ।
जलवटि थलवटि चिहुदसि तणी, वस्तु विदेसि आणइ घणी ।
वीसा दसा विगति विस्तरी, एकश्रावक नि एक महेसरी ।
फडीया दोसी नइ जवहरी, नामी नेस्ती कामि करी ।
विविध वस्तु हाटि पामीइ, छत्रीसइ क्रीयांणा लीइ ।
नगरिं मांडवि वारू पीठ आछी खेरा चोल मजीठ ।
पाडसूत्र पटूआ सालवी वुहुरइ, वस्तु अणावइ नवी ।
कंसारा नट नाणुटीया, घडिया घाट वेचइ लोटीआ ।

कागल कापड़ नइ हथीआर, सांथ सुदागर तेजीसार ।
तल्यां सूखडां तोलइ मान, नागरवेलि अणीआलां पान ।
ईणी परि वस्तु विकाइं बहु जं जोइइं ते वुहुरिं सहु ।
घडी वडी घडी आले सान, राति दिवसनां लाभइ मान ।
चुहुटां चूक चूतरांघणां, ठामि ठामि मांडइ पेखणां ।
सेरी साथ मोकली वाट, नगर मांहि छोह पंक्ति हाट ।
घांची मोची सई सुतार, वसई नगर मांहि वर्ण अढार ।
गांछा छीपा नई तेरमा, विवसाईआ वसइ नगरमां ।
आप आपणि काजि सहूँ मिलइ, चुहटइ हईइ हईउ दलइ ।
आशापुरी आदि योगिनी, देव चतुर्भुज गणपति अनि ।
काह स्वामी गिरुआ प्रासादा, शिखिर तडोवडि लागु वाद ।
आठ पुहरि नित पूजा करई, ईंड धजा वस्त्र फरहरइ ।
वलतइ वारि हुइ नितु जात्र, नाटक नट नचावइ पात्र ।
पुरइ प्रत्य जे ध्याइ लोक, भूख दुःख नइ टालइ शोक ।
जोउ जिणालां ठाम विशाल, वसही देहरां नइ पोसाल ।
गढ उपरि जल ठाम विसाल, जालर वावि, कुंड जावालि ।
वारू वावि मांडवी तणी, साहण वावि अति सोहामणि ।
राणी तणी वावि गंभीर, नवलख वाविं निर्मल नीर ।
शोभित बूर्ज बूर्ज कांगरू, नदी तरूअर फलवा वरू ।
सान्हा वावि करहडी जाणी, कान्हमेर रूपडु वरवाणी ।
साहला वाडी तरूअर चंग, राय तणा छइ मडप रंग ।
जेणइ बइसइ जालहुरो कान्ह, राजरीद्धि छइ इन्द्र समान ।

रामपोलि अति रलिआमणी, त्रिणि पोलि तलहट्टि तणी ।
पोलि फूटरी पाटण तणी, चीत्तुडी नइ ढीली तणी ।
बारी पोलि भलेरू भाव, कुँअर तणु तलहट्टि तलाव ।
सुन्दरनाम तलावउ जेउ, भोलाइ बोलीइ बेउ ।
पाणी तणी जे परब अपार, सहुको मांडइ शाहुकार ।
जे पहिरइ मुद्रा कांथडी आविइ यति योगी कापडी ।
देशान्तरी पंखीआ भाट, अन्न अवारीइ पूछइ वाट ।
तरुअर छांह परम चूवटि, राउत रमइ नितु जूवटइ ।
नगर नायका रूप अपार, नितु नितु नवला करइ सिणगार ।
तासितणइ मंदिर विसमइ, भोगी पुरूष तेहस्यूं रमइ ।
वावि, सरोवर वाडी कुआ, नगर निवेसी ढलइ ढीकुंवां ।
गढ गरूउ जिसिउ कैलास, पुन्यवंतना ऊपरि वास ।
जिसिउ त्रिकुट टांकणे घडिउ, सप्त धातु कोसीसे जडिउ ।
घणी फारकी विसमा मार, जेणी ठामि रहइ झूझार ।
झूझणहारना समदा वली विसमी वाट वहिइ ढीकली ।
गोल यन्त्र मगरखा तगा आगइ गढ ऊपरि छइ घणा ।
उपरि अन्न तणा कोठार व्यापारीआ न जाणुपार ।
माणिक मोती सोना सार, गढ मांहि गरथ भरिया भंडार ।
टांकां वावि भरियां घी तेल, वरस लाख पुहचइ दीवेल ।
जूना सालणां, सूखा खड, ईंधण भणी घणां लक्कड ।
जालहुर गढ विसमु घणु, चाहुआण राय तणु बइसणूं ।
कान्हडदेउ पाटनु धणी, बीजी भूमि भोगवइ घणी ।

राजरिधिनूं कसिऊं वखाण, चालइ पंचवर्ण केकाण ।
चरिइ सेलडी साकर द्राख, अति रूयडा तुरंगम लाख ।
पाणीहरा, पोलिआ, सूआर, दास दिकोलां, संख न पार ।
श्रीगरणा, वइगरणा भला, साणहिता महिता राउला ।
नगर तलहार देस सेलहुत, देहरासरि, विप्र, प्रोहित ।
अवधानीआ अनिटावर, करइ मसाहणी चिंता तुरी ।
इसी अवधि वरतइ राउली, श्रीणीवार घोडा जाउली ।
भंडारी कोठारी जेउ, पूरइ वरू राउलु तेह ।
आव्या ग्या नइ दीजइ मान, बुद्धिवंत राउला प्रधान ।
नितु नितु कीजिरा लगुनि वतां, पोसातां दीजिइ कण हतां ।
चाहुआण घरि आव्या लगइ, ठकराला राउत ऊलगइ ।
सोहलंकी, बाघेला सुहड, रोसाला राउत राठूड़ ।
एक राउत चाउडा नइ हूँण, अति फूटरा, ऊतारइ लूण ।
जयवंता यादव, परमार, गोहिल सबे सबल भूभार ।
एणि परि राजवंशी जे सवइ, लिइ ग्रास गाम भोगवइ ।
तरूआरे सोनानी मूठि करडां खेडां घालई पूंठि ।
कडिं कटारी हीरे जड़ी, पाड सूत्रनी छइ दावड़ी ।
भला भलेरा देशइ हाथी, वयरी सिउं ते वाहइ बाथि ।
मेघवानां फालिया बांधवा, पाए मोजड पागर नवा ।
खांडा पटा तणी गजवलि, अलविइ आगिला, हींउइ गेलि ।
साव लोह भाला नइ सांगि, लिइ हथियार सवे मनरंगि ।
नवां साबटू ठेसवइ पाय, ऊलगीइ कान्हडदे राय ।

रंग बिरंगी मूहगइ मूलि, पहिरइ एक कणयरी भूलि ।
भोजन वारि मंडाइ त्राट, कीरति बोलइ चारण भाट ।
सेव सूंहाली, लाडू गिल्या, आछा मांडा, पापड़ तल्या ।
खाजां खडक, सालणी, वडी, कूर कपूर, तली पापड़ी ।
पंचधार लापसी, कंसार, धान रसोई भाव उढार ।
अति ऊजलां सथरां दही, भुंजाईह लहींइ सही ।
पान कपूर दीइ थइ पात, चूपा सरस चोलिय हाथ ।
मुडुधानि कुमरी घणी, अंतेउरी कान्ह रा तणी ।
सवि सकुलीणी, रूप अपार, माणिक मोती ना सिणगार ।
वडि रा लगुनिं एहवी प्रीति, हईडि सविराय नइ चिंति ।
कान्हडदे राजा सुविचार, रूपिइ जिसिउ अश्विनीकुमार ।
बोलावीइ नितु परधान, छइ दरसन नइ दीजइ दान ।
मंडपि मुहुल दीइ भूपाल, नाचइ पात्र, ऊगटइ ताल ।
जाणइ जोतिष, भरह संगीत, पाठबंध ते गाइं गीत ।
खित्रीवर जे महा सधीर, मालव देव दइलडु वीर ।
जिसी प्रीति लखमण नइ राम, राज अनेरइ एहवी माम ।
जिसी प्रीति हणूया सुग्रीव, जाणि नहि जूजुया जीव ।
सीकरि छत्र चामर ढालइ, साचइ न्याइ प्रजा पालइ ।
देस देस ना आवइ माल, कान्ह, मालवि वयरिसाल ।
मोटिम घरि चहूआणह तणी राज करइ थान कि आपणी ।

दूहा

राजरिद्ध निर्मल सूणी, पुन्य तणइ परमाणि ।
पद्मनाभ पण्डित भणइ, सिर धुणिऊं सुरताणि ।

चुपई

सेवाजल गढि कारण करी, पापी पाप बुद्धि आदरी ।
लोभी एक विटालि आप, लोभि एक करि घण पाप ।
लोभि एक नर लोपि धर्म, लोभि करइ पाडूंआ कर्म ।
लोभि भीलीमाल आथडइ, लोभि एक नखाहणि चडइ ।
लोभि एक विदसि वलइ, लोभि एक नर पाला पलइ ।
लोभि एक दाखवि अणाथि, लोभि बूटां बालि हाथि ।
लोभि एक फरि दारिद्र, लोभि चोर न आवि निद्र ।
लोभि काजि पीयरि मरइ, लोभि कन्या विक्रय करइ ।
लोभि जमलू वासि मत्रसे, लोभि एक सेड्डि सांड से ।
लोभि एक थाइ अन्याय, लोमि एक पडावि बान ।
लोभि धर्म लोप आदरइ, लोभि सगां सहोदर मरइ ।
लोभि एक नर पाडइ वाट, मारइ विप्र नगारी भाट ।
लोभि एक नर छंडिमान, नीच तणि घरि खाइ धान ।
लोभि एक तणूं मन राखि, लोभि एक दीइ कूँडी साखि ।
सेजवाल मनि एवडु लोभ, पाप तणु मनि नाणु त्नोभ ।
हैया सरिसु विमासी जोई, लोभ समु नवि मिलू कोइ ।
लोभ विहुणु जे नर सरइ, पद्मनाभ तेह पूजा करइ ।
सीह मलिक ते राति ज मांहि, सेजवालनि देई कलहि ।
वली लोभ देखाडिया घणा, टंका आपिया सोना तणा ।
कटक चडेवा कहीउ मेल, वेगिं गढि पाडेसि भेल ।
लाधूं सुपन तेणइ वार, ब्राह्मण देखी करिउ जुहार ।

पूछि राय, कवण तू नर, विप्र वेषि हुँ गढ जाल्होर ।
चडिया कटक जु माहरी पूठि, गढ भेलाणू ज्वहिलू ऊठी ।
अछि पाप माहरि जेतलूं, हुँ भोगविसु काल तेतलू ।
पुण्यवंत प्रीति पामसि वली, वंश गढि ताहरू हसि ।
पाछु विप्र ग्यु सांचरी, सुपन देखाडि आशापुरी ।
कीहि, पीठि अह्मे जास्यू आज, जे वांछुं ते सीधा काज ।
वली वंश नर ताहरि कोई माहिर वर्चान पामसि सोइ ।
वली गणेश वुहुणा मांहि, एह ज वात जणावी राइ ।
चुथूं सपन राय जव लहि, कान्ह स्वामी इम आवी कहि ।
एह वात चतुर्मुखि कही, राय विचारि, सान्ं सही ।
कमालदीन मलिक सु प्रमाण, सेजवाल थिउ आगे त्राण ।
माहली राति मलिक दडवडी कान्हमेर गढि चालिउ चढी ।
आगलि थिकु वीक्रमसी गइउ, इसिउ बोल घरणीइ कहिउ ।
हीरादेवि भणि, चंडाल सू, मुख देखाडि तूं काल ।
जेह पसाइ कीधां राज तेहणूं, ते विणसा उयूं काज ।
एक डील नइ कारणि आज, गढ भेलाणु लोपी लाज ।
जे नरनी छि करि प्रतिपाल, दूध तेहनु पीइ बिडाल ।
करि रीर ऊभी घरबारि गढि, दल चढतां देखी नारि ।
इसिउं बोल हीरादे भणिउ, सेजवाल त्र बालु हणिउ ।
सासन आपि ए अहिनाण, पडिउ घरातलि गया पराण ।
अबला अंगि एतलि आहि, हीरा देवि गई गढ मांहि ।
राउल भणि गई पाधरी, ऊभी रही बीनती करी ।

राउल ऊधारिउ वात, सेजवाले गढ कीधु घात ।
सुहुणा तणी वात सवि मिली; कान्हडदेवि बूंब सांभली ।
कांधिल तणइ साथि तिखिवार, दस सहिस धाया भूंभार ।
उलीचु भड जाणी तासउ राउल, रणवट आलउ इसिउ ।
कांधिल भडिउ कटक मांहि जाइ, सीह मालक मारिउ घण घाइ
मलिक सवे दलमांहि खलभल्या, कान्हमेर जन पाछा वल्या ।
कांधलि कारउ सइफलू भलू, राउलि सहु पूर्वि मोकलू ।
कटक तोरकु सुंडिउ भलूं, आठ पुहर कीधु सइफलूं ।
स्वामी काजि एकमना भड्या, च्यारि सहस सउत रणि पड्या ।
उलींचि कर ऊतारिया बार, सहस मूगल मारीया ।
विहाणामांहि वात मनि धरइ, आव्या राय कोटइ कांगरइ ।

★

ईसरदास

●●

संसार को पाप की दावाग्नि में झुलसता हुआ देख कर रोहोड़िया चारण ईसरदास ने 'हरि-रस' रूपी समुद्र की रचना की।

—केशवदास गाडण

ईसरदास

● ●

भारतीय मनोवृत्ति बड़ी ही विलक्षण है, अनेक विपरीत व प्रत्यक्ष में अनर्गल लगने वाली बातों का एक साथ समन्वय देख कर हमें आश्चर्य चकित होना पड़ता है, और फिर इस समन्वय को उप-जीव्य बना अनेक किंवदँतियां प्रचलित हो जाती हैं। अपने समर्थकों द्वारा अपार महिमा से मण्डित होकर ये लोक-कथाओं का रूप धारण कर लेती हैं। वैज्ञानिक सामग्री के अभाव में ये किंवदंतियां हमें अपने मार्ग से भटकाने में सहायक होती हैं और इस प्रकार भ्रम में पड़ कर विभिन्न विद्वान् व्यर्थ में मतभेद स्थापित कर लेते हैं। डिंगल के उद्‌भट कवि 'ईसरदास' भी अनेक विरोधी धारणाओं के जनक बने। 'हरि-रस' रचयिता ईसरदास स्वयं बहुत बड़े पहुँचे हुये भक्त माने जाते हैं। आज भी गुजरात, काठियावाड़ और राजस्थान में ईसरदास रचित 'हरिरस' का अनेक घरों में नियमित रूप से पाठ होता है। 'डिंगल' में शान्तरस को चरम सीमा तक पहुँचाने का श्रेय ईसरदास को दिया जा सकता है। लोक-मनसा में उनको प्राप्त अनेक सिद्धियों को लेकर बहुत सी बातें प्रचलित हैं। कहीं उन्हे महा कवि तुलसीदासजी से श्रेष्ठ भक्त बताया जाता है तो कहीं अनेक चमत्कारों का जनक 'ईसरासो परमेसरा' (ईश्वरदास भगवान के अवतार हैं) कह कर उनका उल्लेख किया जाता है। वहीं दूसरी ओर उन्होंने 'हालां झालाँरा कुंड-लिया' (सूर-सतई) नामक ग्रन्थ में वीर रस का उत्तम व श्रेष्ठ काव्य कौशल प्रदर्शित किया है। प्रत्यक्ष में शांत व वीर रस में समान सफलता के साथ काव्य रचना विरोधी रसों में पूर्ण सफलता पाना अप्रत्याशित जान पड़ता है। इसी को लेकर ठा० किशोरसिंह वार्हस्पत्य ने भ्रम वश 'हालां झालां की कुंडलिया' को अन्य कवि रचित माना है※। किन्तु वास्तविक बात ऐसी नहीं है●। अब

※ किशोरसिंहजी द्वारा सम्पादित 'हरि-रस' प्रस्तावना, पृष्ठ १।

● डॉ० मोतीलाल मेनारिया—हालां झालां रा कुंडलिया—पृष्ठ ६—११।

यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से निश्चित हो चुकी है कि ईसरदास का जन्म संवत् १५९५ की चैत्र सुदी नवमीं को जोधपुर राज्य के अन्तर्गत भाद्रेस नामक गाव में एक चारण परिवार में हुआ। इनके पिता का नाम सूजाजी व माता का नाम अमर बाई था। डिंगल के प्रौढ़ कवि आशानन्द, जो अपनी चतुराई के लिये मारवाड़ नरेश राव मालदेव के बहुत प्रिय थे, इनके चाचा और काव्य-गुरु थे। ईसरदास के जन्म को लेकर निम्न दोहा प्रचलित है, जिससे उक्त कथन का समर्थन होता है—

' पनरासौं पिच्चाणवे,
जनम्यां ईसरदास ।
चारण वरण चकार में,
उण दिन हुओ उजास ॥

तत्कालीन सामाजिक वातावरण के अनुरूप ही चवदहवें वर्ष में ही इनका विवाह कर दिया गया था। बालक ईसरदास अपना आपा भी नहीं सम्भाल पाया था कि उसके माता पिता का देहान्त हो गया। ईसरदास के चाचा आशानन्द स्वयं बड़े कवि थे और डिंगल में प्रौढ़ कविता किया करते थे। ऐसे गुणी चाचा की छत्र-छाया में ईसरदास काव्य शिक्षा व जीवनोपयोगी व्यावहारिक शिक्षा भी पाते रहे। इक्कीस वर्ष की आयु में उनकी पत्नी देवलबाई का देहान्त हो गया। देवलबाई के समान पति-भक्ति-परायणा पत्नी के स्वर्गवास से उन्हें बड़ी ठेस पहुँची और संसार के सभी सुखों के प्रति उनके मनमें विरक्ति हो उठी।

और एक दिन ईसरदास अपने काका आशानन्द के साथ द्वारका यात्रा को निकले। मार्ग में जामनगर में पड़ाव डाला गया। रावल जाम उस समय जामनगर में अधिपति थे। उन्होंने डिंगल के इन दोनों कवियों का अच्छा सम्मान किया। द्वारका यात्रा से लौट आने पर ईसरदास को तो रावलजी ने जामनगर में ही रोक लिया। उन्हें 'करोड़ पसाव' व कुछ गांव दिये और अपना पोल पोत बना लिया। यथा—

क्रोड़ पसाव ईसर कियौ,
दियौ सचांणौ गाम।
दाता सिरोमन देखियौ,
जगसर रावळ जाम ॥

यहीं पर रावलजी के आग्रह और प्रयत्नों से इनका दूसरा विवाह भी हो गया। जामनगर दरबार में पीताम्बर भट्ट नामक राज-पण्डित थे जो संस्कृत के बड़े अच्छे जानकार और दर्शन, धर्म-शास्त्रपुराण आदि के अच्छे ज्ञाता थे। ईसरदास ने ऐसे गुणवान प्रकाण्ड पण्डित के सम्पर्क में आकर बहुत सी बातें सीखीं। अपने 'हरि-रस' नामक ग्रन्थ में इन्होंने अपने गुरू पिताम्बर भट्ट का आभार प्रदर्शित किया है—

लागूं हूँ पहली लुलै,
पीताम्बर गुर पाय।
भेद महारस भागवत,
प्रभूँ जास पसाय।

अर्थात् जिनकी प्रसन्नता (कृपा) से मैंने भगवत् सम्बन्धी महारस का भेद प्राप्त किया, उन्हीं पीताम्बर गुरू के चरणों को मैं सबसे प्रथम झुक कर स्पर्श करता हूं।

और वेद शास्त्रों के गम्भीर आध्ययन ने उन्हें अध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ाया। राज दरबार में रहकर भी वे राज दरबारी न बन सके, दुबारा विवाह करके भी वे गृहस्थी में उलझ न सके, सांसारिक क्रिया कलापों में आकण्ठ निमग्न रह कर भी वे उसमें रस न लेसके। अध्ययन, मनन ने उनको एक अभूतपूर्व तटस्थता दी। सामन्तवादी वातावरण, वैभव व विलास का आकर्षण, मदिरा व यौवन की मादकता उन्हें प्रभावित न कर सकी। उनकी प्रथम पत्नी देवलबाई की मृत्यु से उनके मानस में वैराग्य का जो अंकुर फूट निकला, वह

सामन्तीय जीवन व्यवस्था में भी विकास पाता रहा, श्रृंगार के पाले से पूर्णतया अप्रभावित रहा। डिंगल भाषा में कवि अपनी साधना के सतत काव्य-पुष्प चढ़ाता रहा। 'हरि-रस,' 'छोटा हरि-रस,' 'बाल-लीला,' 'गुण भागवत हंस,' 'गरूड़-पुराण,' 'गुण-आगम,' 'निन्दा-स्तुति,' 'वैराट,' 'रास-कलास,' 'सभा-पर्व' और 'देवियाण' सभी काव्य ग्रन्थों में आध्यात्मिक तत्व प्रधान हैं। काव्य को धर्म-ग्रन्थ के रूप में कैसे ग्रहण किया जाता है, इसके लिये हमें 'हरि-रस' देखना चाहिये। ईसरदास के कवि-कौशल ने और अनुश्रुतियों में प्रसिद्ध उनकी परोपकार वृत्ति ने उनके 'हरि-रस' को अनेक श्रद्धालुओं के लिये 'गीता' बना दिया है। जैसा कि संकेत किया जा चुका है, ईसरदास धार्मिक, पर दुःख कातर, सहिष्णु व सज्जन एवं निष्काम व्यक्ति थे। हलवद नरेश रायसिंह ने अनेक बार इनकी सहायता की थी। कहा जाता है कि तत्कालीन मुसलमान शासकों के अत्याचारों के विरूद्ध इन्होंने अपने को सौंप दिया था। गुजरात का नबाब इन्हें एक बार गिरफ्तार भी कर चुका था, तब उक्त रायसिंह ने नबाब को आवश्यक धनराशि दी और ईसरदास को जेल से छुटकारा दिलाया। ऐसे निस्पृह, शान्त, सेवाभावी, निडर और कुशल कवि की दूसरी प्रसिद्ध रचना 'हालां झालां री कुंडलिया' है।

इस कृति में अद्भुत भावभंगिमा व स्वर-संगति है। उल्लास और वीरत्व की सफल अभिव्यंजना है। इसमें ईसरदास ने हलवद नरेश झाला रायसिंह और ध्रोल के ठाकुर हाला जसाजी के युद्ध का वर्णन श्रेष्ठ व्यंजक काव्य के रूप में किया है। यह भी 'हरि-रस' की भांति ही डिंगल की श्रेष्ठ कृति है, और बहुत अधिक लोक-प्रिय है। डिंगल के प्रख्यात कवि बांकीदास और रसावतार सूर्यमल्ल मिश्रण भी ईसरदास की कविता से अप्रभावित नहीं रह सके। ईसर-दास के अनेक पदों के आधार पर अन्य कवियों ने अपनी रचनायें की। ऐसा जादू है, वाणी के वरद-पुत्र ईसरदास की कविता जो सिर पर चढ़ कर बोलता है।

चालीस वर्ष तक जामनगर में रहने के बाद अपनी मातृ-भूमि का मोह उन्हें पुनः भाद्रेस खींच लाया और वहीं लगभग ८० वर्ष की आयु में (सं० १६७५)

में उनका देहान्त हुआ। शब्द-चयन का चतुर माली, काव्य तन्त्र का सफल साधक, वीर और शाँतरस को साकार बनाने वाला चितेरा ईसरदास इस धरती के म्रियमाण जना को अमरत्व का 'हरि-रस' पिलाता, निरूत्साहों को 'हालाँ झालाँ की ललकार सुना प्रोत्साहन देता स्वयं इस धरती से चल पड़ा। पर्याप्त दीर्घ जीवन, श्रेष्ठ संगत, विपुल ऐश्वर्य, सुख और सम्मान पाकर, सफल जीवन का आदर्श रख ईसरदास ने स्वयं अपना जीवन सफल किया और डिंगल काव्य को 'सुफल' बना दिया।

★

ईसरदास

हालाँ झालाँ रा "कुंडळियाँ"

घोड़ाँ हींस न भल्लिया पिय नींद्ड़ी निवारि।
वैरी आया पात्रणाँ दल-थँभ तुझ दुवारि ।।
दल-थँभ तुझ दुवारि झुँझारि घत्र । तणा।
घणाँ विरद्दाँ लहण आविया अरि घणा।
घणाँ नींदालवाँ नींद वारौ घणीं।
तूंग नहँ छै भलो हींस घोड़ाँ तणी ।।१।।

× × ×

माल्हं ताँ घरि आंगणौं सखी सहेली ग्रामि।
जो जाणूँ पिय माल्हणा जै मल्है संग्रामि ।।
ग्रामि संग्रामि झूँझार माल्है गहड़।
अरि घडा खेसवै आप न खिसै अनड़ ।।
धाइ भांजै घड़ा खाग त्राछै घणाँ।
मेर मांझी जसौ हेक रिण माल्हंणौं ।।२।।

× × ×

सादूलौ आपा समौ बियौ न कोय गिणंत।
हाक बिडाणी किम सहै घण गाजियै मरंत ।।
मरै घण गाजियै जिकौ सादूल महि।
सत्राँ चा ढोल सिर सकै किम जसौ सहि ।।

वयण घणा साँभलै रहैं किम वीसमौ ।
सुपह सादूल कुणि गिणौ आपा समौ ॥३॥

× × ×

केहरि मरुँ कलाइयाँ रुहिरज रतड़ियाँह ।
हेकणि हाथल गै हणै दंत दुहत्था ज्याँह ॥
दंत दुहत्था ज्याँह हाथियाँ सबळ दळ ।
आवधाँ अरहराँ चूर करणौ अकल ॥
रोळसी खळदळाँ चखाँ रातंबरी ।
कलायाँ मरूँ त्याँ जसौ गज केहरी ॥४॥

× × ×

केहरि केस भमंग–मणि सरणाई सुहडाँह
सती पयोहर कृपण धन पड़सी हाथ मुवाँह ॥
मूवाँहिज पडैसी हाथ भमंग–मणि ।
गहड़ सरणांइयाँ ताहरै गै डसणि ॥
काळ ऊभौ जसौ सकै नेड़ा करी ।
कुणि सती पयोहर मूछ लै केहरी ॥५॥

× × ×

सखी अमीणां कंथ रौ अंग ढ़ीलौ आचंत ।
कड़ी ठहक्कै बगतराँ नड़ी नड़ी नाचंत ॥
नडी नाचै भिडै छोह लोहा भिलै ।
ऊससै सुबप मुख मूछ भोहाँ मिलै ॥

खगाँ उनगाँ पिसण पाड़ि ऊभौ खड़ौ ।
कहूँ इण भाँति ढीलौ सखी कंथड़ौ ।।६।।

× × ×

ग्रीभणि काँइ उतावळी ह्य पलाणतां धीर ।
काय बेसाणूँ सत्र सिर काय आपणौ सरीर ।।
आपणां गात काय अरि कमल ऊपरां ।
चापड़ै रातड़ामुखाँ आमिखचरां ।।
धीर हय पलाणत कहै साम्हौ धणी ।
गयण मग आकुळी फिरै किम ग्रीभणी ।।७।।

× × ×

सेल घमोड़ा किम सह्या किम सहिया गज दंत ।
कठिण पयोहर लागताँ कसमसतौ तूं कंत ।।
कंत सूँ ओल्हँबौ दियौ इम कामणी ।
अँण घट आज रा केम सहिया अणी ।।
ईखता आप नारँग फल आकरा ।
मह्या किम कंत अै घाव घट सेल रा ।।८।।

× × ×

मतिवाला घूमै नहीं नहँ घायल बरड़ाय ।
बाळि सखी उद्रंगड़ौ भड़ बापड़ा कहाय ।।
बालि ऊद्रंगड़ौ बसै भड़ बापड़ा ।
घाव अंग सहै नहँ विभाड़ै अरि घड़ा ।।

घणा जसवंत रा जोध विहसै घणा ।
मांडिसी सही मतिवाला वेढ़ीमणा ॥६॥

× × ×

सिणगारी सन्नाह सूँ त्रिम कामणि वरियाम ।
वरि आई हाला वरण करण महा जुध काम ॥
काम सग्राम ची हाम जुध कामणी ।
घणा नर जोवती भोमि आई घणी ॥
महाबळ धवळ रा साहि वरमाल तूँ ।
सबळ घड़ कड़तलाँ घणा सन्नाह सूँ ॥१०॥

× × ×

फेरा लेतै फिर अफिर फेरी घड अणफेर ।
सीह तणा हरधवळसुत गहमाती गहड़ेर ॥
गहड़ गड़—कामणी करै पाणीग्रहण ।
करगि खग वाह तो जुवा जूसण कमण ॥
कोपियै छाकियै चहर भड़ अहर करि ।
फुरळतै पिसण घड़ फेरवी अफिर फिरि ॥११॥

× × ×

हरिरस

मंगलाचरण

पैलो नाम परमेशरो, जिण जग मंड्यो जोय ।
नर मूरख समझै नहीं, हरि करै सो होय ।

आत्म प्रबोध

हरि हरि करतां हरष कर, अरे जीव अणबूझ ।
पारस लाधो आ प्रकट, तन मानव रो तूझ ॥
नारायण न विसारिये, नित प्रत लीजे नाम ।
जो लाभै मनुष्यां जनम, कीजै उत्तम काम ॥
हंस मांहला मूंढ़ रे, कर हरि सूं विसराम ।
मर मर घर पर कर मति, उर धर गिरधर नाम ॥
जीहां जप जगदीशवर, धरि अंतर मँह ध्यान ।
क्रम बंधण नह बंधवै, भय भंजण भगवान ॥
नित हरि वीसरजे नहिं, आतम मूंढ अजाण ।
काळ सबळ जग काटवा, कस ऊभो केवाण ॥
राम जपंतो रे रूदा, आलस मकर अजाण ।
जे तू गुण जाणे नहिं, पूछे वेद पुराण ॥
ज्यां जागे त्यां राम जप, सूंता राम संभार ।
उठत बैठत आतमा, चालंता चित्तार ॥
रहे जुंभ्यो राम रस, अन रस गणे अलप्प ।
अेह महा भ्रम आतमा, अे तीरथ अे तप्प ॥
नाम सु तीरथ नाम वृत, नाम सलंभो काम ।
अेको अक्षर तत्व फळ, जीहां जपौ श्रीराम ॥
नाम जपंता राज श्री, राम भणंता रिद्ध ।
राम नाम संभारते, पामीजै नव निद्ध ॥

भाग्य वड़ा तो राम भज बखत बड़ा कछु देह ।
अकल बड़ी उपकार कर, देह धर्यां फल अेह ॥
राम भणो भण राम भण, अवरां राम भणाय ।
जिण मुख राम न ऊचरै, जा मुख लोह जड़ाय ॥

भगवान की स्तुति

छंद बेअकखरी

विपम कपिल हयग्रीव विशंभर,
दत्तात्री हरि हंस दामोदर ।
राय विकुंठ धनंतर रीषभ,
गरूडारूढ प्रथू प्रशनिग्रभ । १ ।
मच्छ कच्छ वाराह महमहण,
नरसींह वामण नारायण ।
द्विजराम रघुराम दिवाकर,
कृष्ण बुद्ध कलकि करुणाकर । २ ।
बळ अवतार तूंही बलि बंधग,
भगत तणा धरिया दुखभंजण ।
तवजे हरि अवतार तुम्हारा,
सद्गति लही छूटे संसारा । ३ ।
बद्रीवासी वाभि वृन्दावन,
परम निरंजन मुकत सुपावन ।
जगअवतार नमो जगदीशर,
अनन्त रूप धारण तन ईसर । ४ ।

चवतां चरित तुहारा चेतन,
जनम नहीं पुनरपि मानव जन।
अकल अजन्मा अलख अलेपम,
क्रम हूँ छुटिश तुझ कथता क्रम। ५।
माहरा करम मेटवा माधव,
क्रम हूँ कथीश तुहारा केशव।
नाम तुहारो हूँ घण नामी,
सांस उसांस संभारिश सामी। ६।

× × ×

अनंत उर आरति उतारिश,
सोळ प्रकार पूजा संभारिश।
भाव भगति करतो जगभावन,
पतित शरीर करीश इम पावन। ९।

× × ×

तूझ विषै मति दे भुव तारण,
कूप संसार काढिय सब कारण।
फेरायण भवोभव फरतो,
माधव राखिय जनमतो मरतो।२७।
पाप करंतो मो मन पापी,
ताहरे नाम जाय सह तापी।
नारायण तो सम को नाहिं,
चौदह भुवन हुकमचे माहिं।२८।

आ संसार असार अनामी,
सार अवार लीजियो सामी।
त्रिभुवन नाथ नहीं कोय तोले,
बांह ग्रहो अब ईसर बोले।२६।

गीत

खेधे लग खत्री खड़ग हथ खारा,
मद ही इन्द्र सभा मिळिया।
बीजी वार सरगपर बेऊ,
साहेब – रासौ सांफळिया॥१॥

हथि कजयळा ओथि कज अपछर,
सूरन सकिया करी समास।
कड़तल राण गयघण कीछौ,
कळह वळी दूजौ कविळास॥२॥

आड़ा अमर हुआ अणियारां,
जोध न करि सकिया जुवा।
हेकां रासौ–बीको हुवै या,
हेकां साहेब, पत्रौ हुवा॥३॥

रासो साहेब बाग्या रुकै,
सघळौई संसार सुवां।

मोटौ जुध हिक हुवो माळियै,
हेक वळी जुध सरग हुवौ ॥४॥

आधो आध अपछरा आवी,
सुर गंध्रव किया समभाव।
मानाउत हालाउत मिळिया,
इन्दर सभा बीच बैठा आव ॥५॥

★

पृथ्वीराज

●●

[पृथ्वीराज अपने युग के वीर सामन्तों में एक श्रेष्ठ वीर थे और पश्चिमीय ट्रयूडर राजकुमारों की भांति अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा किसी भी कार्य का पक्ष उन्नत कर सकते थे और स्वयं तलवार लेकर लड़ भी सकते थे । इतना ही नहीं, राजपूताने के कवि समुदाय ने एक स्वर से काव्य-गुणोत्कर्ष का सेहरा भी इन्हीं वीर राठौड़ के सिर पर बाँधा था ।

—कर्नल टॉड

पृथ्वीराज (पीथल)

●●

जिस युग ने पृथ्वीराज का निर्माण किया, वह युग सामन्तीय व्यवस्था का युग था। जन साधारण सामान्य घरानों में जन्म लेकर भी ऊंचे सामन्त बनने की आकांक्षा रखते थे, जन समाज से दूर रह कर अपने को श्रेष्ठ दिखाना चाहते थे। विजेताओं के सामने सिर झुका कर स्वयं छोटे बड़े जमीदार ठाकुर बनना चाहते थे अथवा बाहुबल से मार काट मचा किसी भूखंड पर अधिकार जमाना चाहते थे। उनका प्रयत्न होता था कि वे सामान्य व्यक्तियों से अलग रहें और वे सचेष्ट रहते थे कि लोग उन्हें बड़ा समझें। अपने से अलग समझें। अलगाव ही उन दिनों बड़प्पन का प्रतीक बन गया था। परन्तु कितने आश्चर्य की बात है कि ऊँचे राज-घराने में जन्म लेकर, सम्मानित दरबारी बन कर भी पृथ्वीराज जनता के बहुत निकट आ गये। वे दरबारी थे—आपाद मस्तक ऐश्वर्य व विलास के उपभोक्ता थे। अकबर की मजलिस के उज्वल रत्न थे। अनन्य सुन्दरी चम्पादे के पति थे। काव्यमर्मज्ञ लालादे भी उनकी पत्नी थी। शृङ्गार और विलास उनके लिये समस्त उपकरण लिये सदा तैयार था। इसी तरह वे योद्धा थे। रण में चातुर्य बताने वाले साहसी, उत्साही और तेजस्वी पीथल— जिनकी धमनियों में ओजस्वी विशुद्ध राजपूती रक्त प्रवाहित हो रहा था। जिनकी जीवन सहचरी के शौर्य को अकबर के मीना बाजार का 'नौरोज जश्न' बन्द कराने का श्रेय मिला। सच्चे वीर सदा किसी आदर्श के प्रति दृढ़ होते हैं—और पीथल भी सत्य और मातृभूमि के प्रति अपने को अन्त तक कर्तव्य-निष्ट बनाये रख सके। वे अकबर के दरबारी थे पर स्वाभिमानी थे। देशाभिमानी थे। वे विद्वान थे। संस्कृत, डिंगल, पिंगल, काव्य शास्त्र, भारतीय दर्शन, ज्योतिष, संगीत छन्द-शास्त्र और युद्ध कला में अच्छा दखल रखते थे। वीर, शृङ्गार, शान्त –सभी रसों में उच्च कोटि की रचना करते थे। गुणी थे, गुण-ग्राहक थे और अध्ययन शील थे। उनके ये तीनों रूप एक दूसरे से बढ़कर थे

भारतीय परम्परा गत सामन्तीय गुणों से युक्त होने पर भी वे जनता के इतने अधिक प्रिय होगये हैं कि उन्हे सामान्य 'राजस्थानी जन' से अभिन्न ही समझा जा सकता है। लोग ऊंचे उठने के सपने देखते हैं, और ये ऊपर से नीचे उतरे और ऐसा करने से अपने को वे बहुत ही ऊंचा उठा गये।

ये बीकानेर नरेश रायसिंह के अनुज थे और अपने बड़े भाई की राजनीतिक आवश्यकता के कारण अकबर के यहाँ रहते थे। इनका जन्म मार्ग शीर्ष कृष्णा एकम् सं० १६०६ में बीकानेर में ही हुआ। तत्कालीन राजपुत्रों की भांति ही इनका लालन पालन हुआ। बड़े होकर जिन उच्च गुणों के भण्डार ये बने, ऐसे बिरले ही राजपुत्र हुये हैं। पीथल के निम्न डिंगल ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं— १. बेलिक्रिसन रूकमणी री २. दसम भागवत रा दूहा ३. गंगालहरी ४. बसदेरावउत ५ दसरथरावउत ६. फुटकर पद-गीतादि।

इनका सर्व-श्रेष्ठ काव्य-ग्रन्थ 'बेलि' है। नाभादास ने 'भक्तमाल' में इनकी गणना कर, दुरसा आढ़ा ने 'बेली' को 'पाचवां वेद' माना और जनश्रुति ने इनकी मृत्यु के समय सफेद कौवे के आगमन की कथा गढ़ उन्हें भक्त बना दिया है और बेलि को भक्ति काव्य का रूप दे दिया है। किन्तु उन्होंने स्वयं उसे 'नायिका' की प्राथमिकता देकर शृङ्गार काव्य-घोषित किया है और वयसंधि, नखसिख, संयोग, शृङ्गार, षट्ऋतु वर्णन पर पूरा ध्यान दिया है। दूसरी और रूकमणी हरण, व शिशुपाल, रूक्म, बलराम व कृष्ण के युद्ध का वर्णन कर उसे वीर काव्य बना दिया है। भक्ति, वीरता और शृङ्गार की ऐसी त्रिवेणी भला कहां मिलेगी ? डॉ० टैसीटेरी ने बेलि की प्रशंसा में लिखा है, 'यह काव्य कला की दक्षता का विलक्षण नमूना है, जिसमें आगरे के ताजमहल की तरह, भाव की एकाग्र सहजता के साथ अनेकानेक काव्य गुण विस्तार का सुखद संमिश्रण हुआ है और जिसमें रस और भाव का सर्वोत्कृष्ट सौंदर्य तथा काव्य के बाह्य आकार की निष्कलंक शुद्धता को ज्वाजल्यमानरूप में प्रदर्शित किया गया है। यह डिंगल का श्रेष्ठतम 'क्लेसिक' है। राजस्थान के प्राचीन पुस्तकालयों और जैन भंडारों में शायद ही कोई ऐसा हो, जहां इसकी दो चार प्रतियाँ न

मिले। इसी काव्य ग्रन्थ की संस्कृत में टीका लिखी जाने का सौभाग्य मिला। राजस्थान की विभिन्न बोलियों में भी इसकी टीकायें लिखी गई हैं।

'दसमं भागवत रा दूहा' शान्त रस की कृष्ण भक्ति को आधार बना लिखी हुई रचना है। 'गंगा लहरी' में भागीरथी की स्तुति में ८० के लगभग दोहे रचे गये हैं। 'दशरथ रावउत' और 'वसदेव राउवत' ग्रन्थों में क्रमशः राम भक्ति व कृष्ण भक्ति के दोहे हैं। इनके अतिरिक्त पीथल रचित अनेक वीर रसात्मक फुटकर गीत, दोहे व कवित्त भी राजस्थान में प्रचलित हैं। ये रचनायें युग सापेक्ष हैं और तत्कालीन मुगल आतंक के नीचे कराहती मानवता की अभि-व्यक्ति हैं। इनमें असाधारण बल, प्रचंड प्रवाह और प्रखर तेजस्विता है। इसी गुण को देख कर ही तो डॉ० टैसीटेरीने उन्हें डिंगल का 'होरेस कहा और टाड जैसे इतिहासकार को उनकी कविता में दस सहस्र घोड़ों का बल स्वीकार करने में गर्व अनुभव हुआ। कहना न होगा पीथल डिंगल के सर्वश्रेष्ट कवियों में से एक हैं।

कर्नलटाड ने इनके सम्बन्ध में लिखा है—'पृथ्वीराज अपने समय के क्षत्रियों में एक श्रेष्ठ वीर थे और पश्चिमीय ट्य डर राजपुत्रों की भांति अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा मानव हृदय को स्फूर्त और प्रोत्साहित कर सकते थे तथा आवश्यकता पड़ने पर हाथ में तलवार लेकर स्वयं लड़ भी सकते थे। इतना ही नहीं, राजस्थान के कवि समुदाय ने एक स्वर से काव्य गुणोत्कर्ष का सेहरा भी इन्हीं वीर राठौड़ के सिर पर बाँधा था। यह निश्चित है कि पीथल निपुण योद्धा और निपुण कवि दोनों थे। अकबर की ओर से इन्होंने अनेक बार लड़ाइयाँ लड़ी पर स्वदेशाभिमान की प्रबलता दब न सकी। अकबर के आश्रित रहने पर भी ये हृदय से उसके समर्थक नहीं बन सके। जब इन्हें ज्ञात हुआ कि महाराणा प्रताप ने अकबर को सुलह के संबंध में पत्र लिखा है तो उन्हें बड़ा बुरा लगा, उन्होंने स्वयं महाराणा को पत्र लिखा। कहना न होगा कि पीथल के ओजस्वी पत्र को पढ़ कर महाराणा पुनः युद्ध की तैयारी करने लगे। इस घटना मात्र से ही हम पीथल के दीप्त व्यक्तित्व की कल्पना कर सकते हैं।

काव्य के क्षेत्र में, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सर्वोच्च आसन पाने के अधिकारी हैं। ये वैष्णव भक्त थे और साथ ही विलासमय जीवन बिताने वाले थे। युद्ध नैपुण्य और काव्य कुशलता, आस्थामय भक्ति और विलासमय दिनचर्या परस्पर विरोधी बातों से उनका जीवन भरा था, किन्तु वे सदा अपने प्रति इमानदार थे। हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और वाली बात नहीं थी। डॉ० टैसीटेरी के अनुसार 'ये पराक्रम और अदम्य स्वाभिमान को श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखते थे और दीनता, गुलामी, और नैतिक पतन के शत्रु थे। जिस स्वाभाविक उदारता के साथ—ये किसी शत्रु अथवा मित्र की, उसके वीरत्व और प्रणपालन की कवित्वमय प्रशंसा कर सकते थे, उसी स्पष्टता और उदारता के साथ कविता में स्वयं अपने भाई बीकानेर नरेश की—यही नहीं सत्तासम्पन्न सम्राट अकबर तक की भी, उनके किसी अत्याचार अथवा निकृष्ट कार्य के लिये निन्दा कर सकते थे। ऐसे वीर कवि का देहान्त मथुरा में सं० १६५७ में हुआ पर, वह आज भी अमर है—युग युग तक इसी प्रकार अमर रहेगा।

★

पृथ्वीराज

वेलि क्रिसन रूकमणी री

रूकमणी वर्णन

दक्खिन दिसि देस विदरभति दीपति
पुर दीपति अति कुँदणपुर ।
राजति एक भीखमक राजा
सिरहर अहि नर असुर सुर ॥१०॥
पंच पुत्र ताइ छठी सुपुत्री
कुँअर रूकम कहि विमल कथ ।
रूकमबाहु अनै रूकमाली
रूकम केस नै रूकमरथ ॥११॥
रामा अवतार नाम ताइ रूखमणि
मान सरोवरि मेरूगिरिं ।
बालकति करि हंस चौ बालक
कनकवेलि बिहुँ पान किरि ॥१२॥
अनि वरिस वधै ताइ मास वधै ए
वधै मास ताइ पहर वधन्ति ।
लखण बत्रीस बाल लीलामै
राजकुँअरि द्रूलड़ी रमन्ति ॥१३॥
संग सखी सील कुल वेस समाणी
पेखि कली पदमिणी परि ।

राजति राजकुँअरि रायअंगण
उडीयण वीरज अम्ब हरि ॥१४॥
सैसव तनि सुखपति जोवण न जाग्रति
वेस सन्धि सुहिणा सु वरि ।
हिव पल पल चढ़तौ जि होइसै
प्रथम ज्ञान एहवी परि ॥१५॥
पहिलौ मुत्र राग प्रगट ययौ प्राची
अरूणकि अरूणोद अम्बर ।
पेखे किरि जागिया पयोहर
संज्ञा वन्दण रिखेसर ॥१६॥
जम्प जीव नहीं आवतौ जाणे
जोवण जावणहार जण ।
बहु विलखी बीछडती बाला
बाल सँघाती बालपण ॥१७॥
आगलि पित मात रमन्ती अंगणि
काम विराम छिपाडण काज ।
लाजवती अंगि एह लाज विधि
लाज करन्ति आवै लाज ॥१८॥
सैसव सु जु सिसिर वितीत थयौ सहु
गुण गति मति अति एह गिणि ।
आप तणौ परिग्रह ले आयौ
तरूणापौ रितुराउ तिणि ॥१९॥

दल फूलि विमल वन नयण कमल दल
कोकिल कंठ सुहाइ सर ।
पाँपणि पंख सँवारि नवी परि
भ्रहाँरे भ्रमिया भ्रमर ॥ २० ॥

मलयाचल सुतनु मलै मन मौरे
कली कि काम अंकूर कुच ।
तणौ दखिणदिसि दखिण त्रिगुणमै
ऊधर सास समीर उच ॥ २१ ॥

आणंद सु जु उदौ उहास हास अति
राजति रद रिखपन्ति रूख ।
नयण कमोदणि दीप नासिका
मेन केस राकेस मुख ॥ २२ ॥

वधिया तनि सरवरि वेस वधन्ती
जोवण तणौ तणौ जल जोर ।
कामणि करग सु वाण काम रा
दोर सु वरूण तणा किरि डोर ॥२३॥

कामिणि कुच कठिन कपोल करी किरि
वेस नवी विधि वाणि वखाणि ।
अति स्यामता विराजति ऊपरि
जोवण दाण दिखालिया जाणि ॥२४॥

धर धर शृंग सधर सुपीन पयोधरं
घणी खीण कटि अति सुघट ।
पद्मणि नाभि प्रियाग तणी परि
त्रिवलि त्रिवेणी स्त्रोणि तट ॥२५॥

नितम्बणी जंघ सु करभ निरूपम
रम्भ खम्भ विपरीत रूख ।
जुअलि नालि तसु गरभ जेहवी
वयणै वाखाणै विदुख ॥ २६ ॥

ऊपरि पदपलव पुनर्भव ओपति
त्रिमल कमल दल ऊपरि नीर ।
तेज कि रतन कि तार कि तारा
हरिहँस सावक ससिहर हीर ॥२७॥

युद्ध-वर्षा रूपक वर्णन

कठठी बे घटा करे कालाहणि
समुहे आमहो सामुहै ।
जोगिणि आवि आडँग जाणै
वरसै रत बेपुड़ी वहै ॥११७॥
हथनालि हवाई कुहक बाण हुवि
होइ वीरहक गैगहण ।
सिलहाँ ऊपरि लोह लोह सर
मेंह बूँद माहे महण ॥११८॥

कलकलिया कुन्त किरण कलि ऊकलि
वरजित विसिख विवरजित वाउ ।
धड़ि धड़ि धवकि धार धारूजल
सिहरि सिहरि समखै सिलाउ ॥११६॥

कांपिया उर कायरां असुभकारियौ
गाजंते नीसाणे गड़ड़ै ।
ऊजलियाँ धाराँ ऊवडियौ
परनाले जल रूहिर पड़ै ॥१२०॥

चोटियाली कूदै चौसठि चाचरि
भ्रू ढलियै ऊकसै धड़ ।
अनँत अनै सिसुपाल ओझड़ै
झड़ मातौ मांडियौ झड़ ॥१२१॥

रिण अंगणि तेणि रूहिर रलतलिया
घणा हाथ हूँ पड़ै घणा ।
ऊँधा पत्र बुद्‌बुद जल आकृति
तरि चालै जोगिणी तणा ॥१२२॥

बेली तदि बलभद्र बापूकारे
सत्र साबतौ अजे लगि साथ ।
वूठै वाहवियै आ वेला
हल जीपिस्यै जु वाहिस्यइ हाथ ॥१२३॥

विसरियाँ विसर जस बीज बीजित्तै
खारी हालाहलाँ खलाँह ।
त्रूटै कन्ध मूल जड़ त्रूटै
हलधर काँ वाहताँ हलाँह ।।१२४।।

घटि घटि घण घाउ धाइ घाइ रत घण
ऊँच छिछ उछलै अति ।
पिड़ि नीपनौ कि खेत्र प्रवाली
सिरा हंस नीसरै सति ।।१२५।।

बलदेव महाबल तासु भुजाबलि
पिड़ि पहरन्तै नवी परि ।
बिजड़ां मुहे बेड़ते बलभद्र
सिराँ पुंज कीधा समरि ।।१२६।।

रिण गाहटतै राम खलाँ रिण
थिर निज चरण स मेढ़ि थिया ।
फिरि चड़ियै संघार फेरता
केकाणाँ पाइ सुगह किया ।।१२७।।

कण एक लिया किया एक कण कण
भर खच्चे भंजियौ भिड़ ।
बलभद्र खलै खळां सिरि बैठि
चारौ पल ग्रीधणी चिड़ ।।१२८।।

सरिखाँ सँ बलभद्र लोह साहियै
वडफार ऊळजतै विरूधि ।
भलाभलि सति तोईज भंजिया
जरासेन सिसुपाल जुधि ॥१२६॥

आडो अडि एकाएक आपड़े
वाग्यो एम रूषमणी वीर ।
अबला लेइ घणी मुँइ आयौ
आयौ हूँ पग मांडि अहीर ॥१३०॥

संयोगिणि चीर रईं कैरव श्री
धर हर ताल भमर गोधोख ।
दिणयर ऊगि एतला दीधा
मोखियाँ बंध बंधियाँ मोख ॥१८०॥

वाणिजाँ वधू गो वाळ असइ विट
चोर चकव विप्र तीरथ वेल ।
सूर प्रगटि एतला समपिया
मिलियाँ विरह विरहियाँ मेल ॥१८६॥

गीत

ऊगां दन समैं करै आषाड़ा,
चौरंग भुवण हसत अणचूक ।
रोदां तणा रगत सूं राणा,
रंगियो रहै तुहालो रूक ॥१॥

मोकल हरा महाजुध मचतै,
बचतां सर नत्रीठ बहै।
पातल तूझ तणो पडियालग,
रूधर चरचियो सदा रहै ॥२॥

पित कारणै करै नित पलवट,
षेटै कटक तणा षुरमांण।
प्रसणां सोण अहोनस पातल,
पग साबरत रहै षूमांण ॥३॥

ऊगां सुर समौ ऊदावत,
वहै वसू छलबोल विरोल।
चल अल अरी तणौं चीतोड़ा,
चंद्रप्रहास रहै नत चोल ॥४॥

★

दुरसा आढा

●●

[कविता के नाम से जितना धन, जितना यश और जितना मान इनको मिला, उतना राजस्थान के किसी कवि को आज तक प्राप्त नहीं हुआ। यदि किसी को ख्याति को उसकी काव्योच्चता का मापदंड माना जाय तो इस दृष्टि से दुरसाजी का स्थान निस्सन्देह बहुत ऊँचा है।]

— डॉ० मोतीलाल मेनारिया

दुरसा आढा

दुरसाजी बड़े भाग्यशाली कवि थे। कविता के नाम से जितना धन, जितना यश और जितना सम्मान इनको मिला, उतना राजस्थान के किसी भी दूसरे कवि को आज तक नहीं मिला। इस दृष्टि से इनका महत्व हिन्दी के महाकवि भूषण से भी बहुत बढ़ कर है। मेवाड़ के प्रसिद्ध इतिहास लेखक कविराजा श्यामलदास ने अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'वीर विनोद' में लिखा है कि सम्राट अकबर ने इनको छः करोड़ रुपया दिया था। इसके सिवा बीकानेर के महाराजा रायसिंह, जयपुर के महाराजा मानसिंह, और सिरोही के राव सुरताण ने इन्हें एक एक 'क्रोड़ पसाव' दिया था और छोटे मोटे गांव और लाख पसाव तो इन्हें कई राजाओं की ओर से मिले थे। इतना ही नहीं, अकबर के दरबार में इनको बैठक मिली हुई थी, जिसके लिये उस समय के बड़े बड़े राजा महाराजा लालायित रहते और तरसते थे[1]। चाहे यह कथन इतिहास की दृष्टि से पूर्ण सत्य सिद्ध न हो, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि दुरसा आढ़ा ने सामान्य चारण परिवार में जन्म लेकर अपनी काव्य-प्रतिभा के बल पर अपार ऐश्वर्य और सम्मान पाया।

सोजत परगने के धूंधला नामक गांव में सं० १५९२ में बालक दुरसा का जन्म हुआ। इनके पिता बहुत गरीब थे और जब दुरसा ६ वर्ष के ही थे, उनका देहान्त हो गया। कहते हैं पितृ-संरक्षा विहीन दुरसा को बगड़ी के ठाकुर ने पढ़ाया, लिखाया और योग्य बनाया। कवि दुरसा ने स्वयं स्वीकार किया है—

मार्थं मावीताहँ जनम तणो क्यावर जितो।
सोहड़ सुधपातां ह, पालनहार प्रताप सी॥

---

१. मोतीलाल मेनारिया: डिंगल में वीर रस—पृष्ठ ५१।

[वीरों और सुकवियों का पालन करने वाले हैं प्रतापसिंह ! (बगड़ी के ठाकुर) माता के जन्म दान देने के समान, मेरे सर पर तेरा अहसान है ।]

कवि दुरसा चाहे अकबर के विशेष कृपा पात्र न रहे हों, परन्तु अपने युग के प्रभावशाली व्यक्तियों में उनकी गणना की जा सकती है । उनका यह प्रभाव क्यों बढ़ा, इसके संबंध में अनेक किंवदन्तियां उनके मुगल दरबार के सम्पर्क की ओर संकेत करती हैं, किन्तु दुरसाजी की ऐसी विशेष सम्माननजनक मान्यता का पता हमें 'आईने अकबरी' या अकबर नामा से नहीं लगता । अतः 'दुरसाजी का अकबर के दरबारी कवि होने तथा अकबर द्वारा उनको लाख पसाव, क्रोड़ पसाव आदि मिलने की जो बाते कही जाती हैं, उनमें कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है[2] । फिर भी निस्संदेह दुरसा आढ़ा एक प्रभावशाली व्यक्तित्व के स्वामी थे ।

डिंगल के अन्यान्य कवियों की भाँति ही दुरसा आढ़ा कलम और तलवार दोनों के धनी थे । वे कुशल योद्धा थे । सुना जाता है कि सं. १६४० में जिस समय सम्राट अकबर ने सिसोदिया जगमाल की सहायता के लिये जोधपुर के रायसिंह और दांतीवाड़ा के कोलीसिंह की अध्यक्षता में सिरोही नरेश सुरताण के विरुद्ध सेना भेजी, तो दुरसा आढ़ा भी वहीं सेना में साथ थे । दत्ताणी नामक स्थान पर भयंकर युद्ध हुआ । कवि आढा ने इस अवसर पर युद्ध-चातुर्य का शानदार प्रदर्शन किया, परन्तु वे घायल होगये । घायल अवस्था में ही रावसुरताण की आज्ञानुसार एक व्यक्ति इन्हें मारने के लिये आगे बढ़ा तो इन्होंने अपने प्राणों की भिक्षा एक चारण के नाते मांगी । राव सुरताण ने जांच के बाद जब पाया कि दुरसा स्वयं चारण ही है, तो वह उन्हें उठा अपने साथ लेगया और उसने उनकी चिकित्सा की समुचित व्यवस्था कर दी ।

पर्याप्त दीर्घायु पर अनुपम सौभाग्य का लाभ उठा, यश, धन और सम्मान अर्जित कर संवत् १७१२ में इनका देहान्त हुवा । 'पांचोटिया' नामक जिस ग्राम में इनका अग्नि संस्कार हुआ, उस स्थान पर एक स्मृति मंदिर अभी तक बना हुआ है ।

---

२. मोतीलाल मेनारिया: राजस्थानी भाषा और साहित्य पृष्ठ १३८ ।

इनकी एक पीतल की मूर्ति भी अचलगढ़ के मंदिर में स्थापित मिली है। जो इनके देवोपम सम्मान की द्योतक है। इस मूर्ति का अचलगढ़ के अचलेश्वर मंदिर में होने का सर्व प्रथम उल्लेख स्व. गौरीशंकर हीराचंद ओझा के सिरोही राज्य के इतिहास में पाया जाता है। इसके पश्चात् मुनि जयंतविजयजी ने 'अचल गढ़' नामक अपनी पुस्तक में उक्त मूर्ति का चित्र भी प्रकाशित करवाया। उक्त मूर्ति पर सं० १६८६ का एक लेख भी उत्कीर्ण है। किसी कवि की पीतल की मूर्तियों का निर्माण हुआ हो, ऐसा इतिहास नहीं कहता। किन्तु दुरसा आढ़ा की मूर्ति का पाया जाना निस्सन्देह आश्चर्यजनक है। प्राचीन साहित्य के प्रसिद्ध और विद्वान अन्वेषक श्री अगरचन्दजी नाहटा ने दुरसा आढ़ा की एक वास्तविक मूर्ति वहीं खोज निकाली है[3]। बहरहाल बात कुछ भी हो, इतना तो सत्य ही है, कि दुरसा आढ़ा की उक्त पीतल की मूर्ति उनकी अनुपम यश उपलब्धि की साक्षी है। कवि रचित तीन ग्रन्थों का उल्लेख किया जाता है यथा (१) विरूद्ध छहत्तरी (२) किरतार बावनी (३) श्रीकुमार अज्जाजी नी भूचर मोरी नी गज गत। इनमें से अंतिम दो ग्रंथ संदेहास्पद हैं। तब जिज्ञासु के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है, कि इस अपार प्रतिष्ठा का कारण क्या था? जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, अकबरी दरबार की इनकी प्रतिष्ठा के विशेष प्रमाण नहीं मिलते। मुसलमान लेखकों ने कहीं उनका उल्लेख ही नहीं किया है। उनका मुगल दरबार में पहुँचना और अकबर की राम, कृष्ण, अर्जुन, लक्ष्मण आदि से तुलना करना एक पहेली है,[4] जब कि विरूद्ध छहत्तरी में उन्होंने अकबर को 'लालची' 'अधम' 'अकबरियों' आदि नामों से अभिहित किया है, जो व्यक्ति महाराणा प्रताप को समूचे हिन्दुत्व के रक्षक के रूप में गृहीत कर उनका गौरव-गान करता है, वही अकबर को अपने धर्म के महान् देवताओं के सदृश देख भी सकेगा, इसमें सन्देह है। कोई कवि और वह भी ऊँची श्रेणी का, कभी इतना पतित और दुरंगा हो सकता है, यह बात मानने में नहीं आती।

---

३. अगरचन्दजी नाहटा-राजस्थान भारती-भाग ३ अङ्क ३-४ पृष्ट ५६।

४. मेनारिया—राजस्थानी भाषा और साहित्य-पृष्ट १३६।

तो फिर इस विरोधाभास की वास्तविकता क्या है ? मेरी तो निश्चित मान्यता है, दुरसा आढ़ा मुगल दरबार में प्रवेश पा चुके थे। आरम्भ में उनकी ऐसे प्रतापी सम्राट के दरबारी होने की ऊँची महत्वाकांक्षा होना स्वाभाविक ही कहलायेगी किन्तु वे अकबर की आक्रान्ता नीति से शायद समझौता न कर सके, अतः मुगल इतिहासकारों के द्वारा उनकी उपेक्षा की गई। उल्लेख न मिलना ही प्रमाण नहीं माना जा सकता। अकबर के दरबार में पृथ्वीराज (पीथल) का रहना पूर्ण ऐतिहासिक सत्य है किन्तु 'आईने अकबरी' में पृथ्वीराज का उल्लेख बड़े ही मामूली ढंग से दो बार किया गया है। कारण स्पष्ट है। पृथ्वीराज भी अकबर के समर्थक नहीं थे और अकबर के विरोधी राणा प्रताप के प्रशंसक थे। पृथ्वीराज का छोटा भाई रामसिंह तो अकबर के विरूद्ध बलवा कर रहा था। ऐसी स्थिति में यदि आईनेअकबरीकार ने उनकी थोड़ी उपेक्षा की, तो यह सहज स्वाभाविक ही था। फिर दुरसा आढ़ा कुछ काल रहने के बाद ही पुनः राजस्थान में लौट आये होंगे, ऐसी स्थिति में उनका नामोल्लेख न होना ही अधिक अर्थसंगत जान पड़ता है। आशा है, अन्य विद्वान इस ओर अधिक प्रकाश डालेंगे।

इस प्रश्न का दूसरा पहलू भी है। जैसा कि हम देख चुके हैं, इनका प्रामाणिक ग्रंथ 'विरूद छहत्तरी' ही है जिसमें प्रताप के शौर्य और देश प्रेम को चित्रित किया गया है। कलेवर में दीर्घ न होने पर भी उक्त ग्रंथ उनकी इस ख्याति का आधार है। विशुद्ध डिंगल भाषा में ऐसी शक्तिशाली कविता अधिक नहीं मिलती। डिंगल के प्रसिद्ध कवि 'पीथल' की कविता से ही वीर रस में इनकी कविता की तुलना की जा सकती है। उनकी कविता में अपूर्व ओज, सरसता, हृदयस्पर्शिता और प्रभावोत्पादकता है। गुप्तजी ने साकेत में लिखा है 'राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है'–जिस प्रकार राम का चरित स्वयं सिद्ध काव्य है, उसी प्रकार राणा प्रताप का नाम आज भी हमें अपूर्व प्रेरणा देता है। उस समय जब राजनैतिक हलचल का युग था, नागरिक सुरक्षा खतरे में थी, मरना और मारना बहुसंख्यक क्षत्रियों की जीविका बन गई थी, तब प्रताप का नाम हीन भावना से

पीड़ित और भय से आक्रान्त जन-साधारण में आत्म विश्वास पैदा करता होगा। भला ऐसे नर श्रेष्ठ पर लिखा काव्य लोकप्रियता और प्रतिष्ठा क्यों न पाता ? न पाता तो आश्चर्य की बात होती।

प्राप्य सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दुरसा आढ़ा तत्कालीन हीनावस्था के प्रति पूरे सजग थे, किन्तु वे निराशावादी नहीं थे। राणा प्रताप के रूप में समस्त हिन्दू जनता ने रक्षा पायी, एक सुख कि सांस ली। कवि आढ़ा ने इस बात को अच्छी तरह समझाया था और कहा था–सारा संसार निद्रा में बेहोश है, किन्तु राणा प्रताप सबका चौकस पहरेदार है। यहां आढ़ा एक सामंती कवि होते हुये भी जनभावना को अपने काव्य के माध्यम द्वारा सफल और सबल अभिव्यक्ति दे सका। यह उसकी सबसे बड़ी विशेषता है और इसी विशेषता के कारण युग युगों तक उनका नाम आदर के साथ लिया जायेगा।

★

दुरसा आढा

दोहे

अकबर गरब न आँण, हींदू सह चाकर हुवा ।
दीठो कोइ दीवाण, करतो लटका कटहड़ै ॥१॥

अकबर कीना याद, हींदू नृप हाजर हुवा ।
मेदपाट मरजाद, पग लागो न प्रतापसी ॥२॥

कदे न नामै कंध, अकबर ढिग आवै न ओ ।
सुरज बंस संबंध, पालै राण प्रतापसी ॥३॥

अकबर पथर अनेक, कै भूपत भेळा किया ।
हाथ न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी ॥४॥

सांगो धरम सहाय, बाबर सूं भिड़ियो बिहस ।
अकबर कदमां आय, पड़ै न राण प्रतापसी ॥५॥

सुख हित स्याळ समाज, हींदू अकबर बस हुवा ।
रोसीलो मृगराज, पँजै न राण प्रतापसी ॥६॥

है अकबर घर हाण, डाण ग्रहे नीची दिसट ।
तजै न ऊंची ताण, पोरस राणा प्रतापसी ॥७॥

जाणै अकबर जोर, तो पिण ताणै तोर तिड़ ।
आ बलाय है और, पिसणां खोर प्रतापसी ॥८॥

अकबर हिये उचाट, रात दिवस लागी रहै ।
रजवट बट समराट, पावँट राण प्रतापसी ॥९॥

अकबर समँद अथाह, तिहँ डूबा हींदू तुरक ।
मेवाड़ो तिण मांह, पोयण फूल प्रतापसी ॥१०॥
अकबरिये ईकबार, दागल की सारी दुनी ।
अणदागल असवार, रहियो राण प्रतापसी ॥११॥
अकबर घोर अँधार, ऊघाणा हींदू अवर ।
जागै जग–दातार, पोहरै राण प्रतापसी ॥१२॥
अकबर कनै अनेक, नम नम नोसरिया नृपत ।
अनमी रहियो एक, पहुवी राण प्रतापसी ॥१३॥
थिर नृप हिन्दुसथान, लातरगा मन लोभ लग ।
माता भूमी मान, पूजै राण प्रतापसी ॥१४॥
सेलां अणी सनान, धारा तीरथ में धसे ।
देण धरम रण दान, पुरट सरीर प्रतापसी ॥१५॥
ढिग अकबर दळ ढाण, अग अग झगड़ै आथड़ै ।
मग मग पाड़ै माण, पग पग राण प्रतापसी ॥१६॥
चीत मरण रण चाय, अकबर आधीनी बिना ।
पराधीन दुःख पाय, पुनि जीवै न प्रतापसी ॥१७॥
गोहिल कुळ धन गाढ़, लेवण अकबर लालची ।
कोड़ी दै नहँ काढ़, पणधर राण प्रतापसी ॥१८॥
अकबर दळ अप्रमाण, उदैनयर घेरे अनय ।
खागां बल खूमाण, साहां दळण प्रतापसी ॥१९॥
अकबर तड़फै आप, फतै करण च्यारूं तरफ ।
पण राणो परताप हाथ न चढ़ै हमीर हर ॥२०॥

अकबर किला अनेक, फतै किया निज फौजसूं ।
अकल चलै ना एक, पाधर लड़ै प्रतापसी ॥२१॥
कलपै अकबर काय, गुण पूंगीधर गोड़िया ।
मिणधर छाबड़ मांय, पड़ै न राण प्रतापसी ॥२२॥
महि दाधण मेवाड़, राड़ धाड़ अकबर रचौ ।
विखै विखायत बाड़, प्रथुल पहाड़ प्रतापसी ॥२३॥
बंधियो अकबर बैर, रसत गैर रोकी रिपू ।
कंद मूल फळ कैर, पावै राण प्रतापसी ॥२४॥
भागै सागै भाम, अम्रत लागै ऊंमरा ।
अकबर तल आराम, पेखै जहर प्रतापसी ॥२५॥
अकबर मैंगळ अच्छ, मांझल दळ घूमै मसत ।
पंचानन पळ भच्छ, पटकै छड़ा प्रतापसी ॥२६॥
घट सूं औघट घाट, घसियो अकबरिये घणो ।
इल चंनण उप्रवाट, परमल उठी प्रतापसी ॥२७॥
अकबर जतन अपार, रात दिवस रोकण करे ।
पूगी समंदां पार, पंगी राण प्रतापसी ॥२८॥
बड़ी विपत सह बीर, बड़ी कीत खाटी बसू ।
धरम धुरंधर धीर, पोरस धिनो प्रतापसी ॥२९॥
वसुधा किया विख्यात, समरथ कुळ सीसोदिया ।
राणा जस री रात, प्रगट्यो भलां प्रतापसी ॥३०॥
जिण रो जस जग मांहि, जिण रो जग धिन जीवणो ।
नेड़ो अपजस नांहि, पणधर धिनो प्रतापसी ॥३१॥

अजरामर धन एह, जस रह जावे जगत में ।
दुख सुख दोनू देह, सुपन समान प्रतापसी ॥३२॥
अकबर जासी आप, दिल्ली पासी दूसरा ।
पुनरासी परताप, सुजस न जासी सूरमा ॥३३॥
मन री मन रै मांहि, अकबर रै रहगी इकस ।
नरवर करिये नांहि, पूरी राण प्रतापसी ॥३४॥
अकबरियो हत आस, अंबखास झाखै अधम ।
नाखै हिये निसास, पास न राण प्रतापसी ॥३५॥

गीत

आयां दळ सबळ सामहो आवै,
रंगियो खग खत्रवाट रतो ।
ओ नरनाह नमो नहँ आगै,
पतसाहण दरगाह पतो ॥१॥
दाटक अनड़ दंड नहँ दीधो,
दोयण घड़ सिर दाव दियो ।
मेळ न कियौ जाय बिच महलां,
केलपुरै खग मेळ कियो ॥२॥
असपत इन्द्र अवनि आहड़ियां,
धारा झाड़यां सहै धका ।

घण पड़ियां साकड़ियां घड़ियां,
ना धीहड़ियां पढ़ी नका ॥३॥
आषी अणी रहै उदावत,
साखी आलम कलम सुणो ।
राणे अकबर वार राखियौ,
पातल हिंदू-धरम पणौं ॥४॥

★

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१५	स्फोत	स्फीत
३	४	और उनसे भरपूर	और उसने उनसे भरपूर
३	६	अद्‌मुत	अद्भुत
६	५	गह्यौ	गङ्यौ
६	५	पुराडीर	पुण्डीर
७	६	झकि	झुकि
७	२०	धरिय	धरिय
७	२३	कोन	को न
८	३	प्राप्त	प्रात
८	११	बरनिअ कूरयं	वरनि अकूरयं
८	१३	मनकिय	भनकिय
९	२	छेह	छोह
९	५	महजुग	महजुग बंधि
९	८	क्रमं	क्रयं
१०	३	फह्कि	फट्टकि
१०	५	त्रिषम्भ	विषम
१०	११	दह	दल
१०	१८	उभ्भेति	उप्भेति
११	३	उद्ध	अद्ध
११	१०	उद्ध	अद्ध
११	१३	मार	द्वार
१२	१२	बुटठे	बुड्ढे
१२	२१	मद्धि मधि	मधि मद्धि
१३	११	चलाइ	चल्लाइ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६	१६	और	उसे
१७	१५	पवाहु	पवाडु
१८	८	समरि	समरि
१८	६	प्रौढ	प्रौढ
१८	१३	'हंसाउली' १४२७ विक्रमाब्द	'हंसाउली' की रचना १४२७ विक्रमाब्द
१८	६	गलागार	गलाकार
२०	८	पहिठाणं	अहिठाणं
२०	१६	वरणतरि	वरणांतरि
२०	२०	जाय	जात्र
२१	१	यिणिसि	त्रिणिसि
२१	१२	मारू	मारू
२१	१७	चरउ	चाड
२२	७	वश	वंश
२२	६	यथु	थयु
२२	१०	किधी	कीधी
२२	१०	पापिणा	पापिणि
२२	१३	पषणी	पंषिणी
२३	५	सह	सहू
२३	१६	हइ	होइ
२४	६	कुंपर	कुंयर
२४	१३	ग्यु लगुनि	ग्यु रा लगुनि
२७	८	भी	श्री ध्रुव
२७	१४	भी मेहता	श्री मेहता
२८	१७	'वसन्तविलास'	'वसन्तविलासकार'
३१	१७	सुदन्र चंदर वाल	सुन्दर चंदरवाल
३३	५	रच उमग मारि	रचउ मगमारि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३	६	२३	२४
३३	८	मह,मडु	महाभडु
३३	८	२४	२५
३३	१५	कसर	केसर
३३	१६	चांपल तरूभरनी	चांपला तरूयरनी
३३	२०	दोपुक	दीपक
३४	१५	सपरि सिंगारू अंगारू	सयरि सिंगारु अंगारु
३५	२२	वररू	वइरु
३६	१३	घुणहीय	घुणहीय
३७	१	पयोघर	पयोधर
३७	१७	रालि	गोलि
३७	१७	मदभींभलइ भलपणु	मदभींभल इं भलपणु
३७	१६	मलउ	भलउ
३७	२०	रगु	रंगु
३७	२१	विबरू रे भमरू	विवरु रे भमरु
३८	६	बरांसउइ	बरांसडइ
३८	६	नई	नइ
३८	१०	पामरि विलसिन	पामर विलसिन
३८	१३	कसाबुला अबुला	कसांबुला आंबुला
४१	५	'कवित्तभागवत'	'कवित्त भागवती'
४४	५	हराई	गहराई
४५	६	सूंहि	मुंहि
४५	६	मुखइ	मु र व इ
४५	१४	हइ	हई
४५	१५	पल्लीटृय	पर्लट्टिय
४५	१६	पाण	पराण

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५	१७	भौंह	भीछ
४५	२०	फूरा इ	फूगरा इ
४५	२१	करिक कर्मांणियाँ	करि कर्मांणियाँ
४५	२३	१४	१६
४६	१८	निबुम्बुक्कार	नि ब्रम्बुक्का
४७	४	डहल्हि	डहल्लिग्र
४७	६	हे जब	हेजब
४७	१३	६०	३०
४७	१५	मग्निसुरा	मग्गिसु रा
४७	१८	मिइ	मिइं
४७	२०	हूँसमरि	हूँ समरि
४७	२३	ईडस हरितलं	ईडसिहरतलं
४८	३	ईडरसिहरिधणी	ईडरसिहरधणी
४८	८	बम्बाख	बुम्बा रव
४८	१४	धोर	घोर
४८	१५	गाय गेह	गाह अंग
४८	१६	नाह	तेह
४८	२१	जयजयाख	जयजयारव
४९	१०	मवकडा	मक्कडा
४९	१६	—।	॥४९॥
५०	१३	उदयगिरिमण्डल	उदयगिरिमण्डण
५०	२०	वेस	भिडस
५१	५	हवकन्तउ	हक्कन्तउ
५१	८	रणांसर	रणरसि
५१	११	३६	५६
५१	१४	ल्लय	मल्लय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५२	६	दुज्ज	ढुज्ज
५२	६	दुद्दण्डइ	दुद्दण्डइ
५२	११	झुभार	झुज्भार
५२	१५	धल्लि	घल्लि
५३	४	जूना	प्राचीन
५४	१२	अपर्याप्त	पर्याप्त
५५	१८	रचना ऐसे गम्भीर	रचना गम्भीर
५६	२०	ढाचा	ढांचा
५६	११	पलपंडणसमत्य	पलपंडलसमत्थ
५६	१७	चिडरडंति	चिडरडंति
५६	१८	जघजूअल	जंघजूअल
६०	५	कुरगारणगुथलि	कुरंगा रंणथलि
६०	७	ढूआ	धूआ
६१	४	चिहू	चिहु
६१	६	बलीपढउ	बलीपढउ
६२	११	कूजूमि	कुसुमि
६३	६	गाडउगहगहइ	गाडउ गहगहइ
६३	८	चेटकन	चेटकउं
६३	११	डोणां	ढाणां
६४	१७	नवूं	नावूं
६४	१८	भणि	मणि
६५	१२	चउपर	चउपट
६६	१५	आवेवातण	आवेवातणा
६६	४	१६वीं सत्यजीवन वर्मा	१६वीं तथा सत्यजीवन वर्मा
७०	८	मलीन	मलिन
७१	१	प्रदर्शित होती हैं।	प्रदर्शित होती।
७२	१५	तरामैं	तर्णों

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७३	१८	आपौ	आप्यौ
७४	७	कहइ	कहई
७४	८	राय	राई
७४	२१	मालगिर	मालागिर
७४	२४	ब्रह्माण	ब्राह्मण
७६	४	सूजइ	सूझइ
७६	७	सूणरझूणइ	रुणझूणइ
७७	६	कूनले	कुसले
७८	१७	अही—वीषमजी मैं	अही - वीष जी म
७९	१४	चोल्यो	चाल्यो
७९	२०	पून्यचन्द	पून्यमचन्द
७९	२३	ठि	गढ
८०	१	घाडत्रर	घाडंत्रर
८०	२	काट	भाट
८०	६	मराडत्र	मण्डत्र
८३	१२	होने पर हमारे	होने पर भी हमारे
८३	१७	जनगयक	जनगायक
८४	३	हीं है	नहीं है
८५	२६	आजूणि रति	आजूणि राति
८६	२	नवली वति	नवली वाति
८६	१६	अतः प्रसंगों को	अतः थोड़े प्रसंगों को
८६	२२	प्रम-घृणा	प्रेम-घृणा
८७	५	एक नेमाख्यान	एक पेमाख्यान
८७	८	अनुदान	अनुदात्त
८९	१४	पर देसे धांधल	परदेसे धांधल
९०	१३	गउरख	गउख
९०	१६	मेहाँकी गाज	मेहाँरी गाज

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६१	२	बाढ़त	बाढत
६२	६	गिरहू	गिरह
६३	६	सह्लियाँ	सल्हियाँ
६४	१	साँभहियाँह	साँमहियाँह
६५	७	संभा-यउ	संभार्यउ
६६	२	झांझी	सांझी
६७	१३	सीयालउ	सीयालइ
६८	३	हरिंदलाल ध्रव	हरिंदलाल ध्रुव
१०१	१७	प्रमर खंड	प्रस्तर खण्ड
१०२	१६	लोकप्रिय	लोकप्रिय छंदों
१०२	२०	पद्मनाम	पद्मनाभ
१०३	१५	धरि	घरि
१०४	१२	मानीय	मानीइ
१०५	११	काह स्वामी	कान्ह स्वामी
१०५	११	प्रासादा	प्रासाद
१०५	२०	रूपहु वरवाणी	रूयडु वखाणी
१०६	१०	तासतणाइ	तसितणाइ
१०६	१६	गोल यन्त्र	गोला यन्त्र
१०६	२१	विसभु	विसमु
१०७	६	अनिटावर	अनिटावरी
१०८	५	उढार	अढार
१०८	६	मुंजाईह	मुंजाईड
१०८	७	पात, चूपा	यात, चूया
१०८	८	काह्य	काह्म
१०८	१५	खित्रीवर	खित्रीवट
१०८	१५	मालव देव इइलु	मालवदेव छइला

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	२	सेवाजल	सेजवाल
१०६	४	एक नरवाहणि	एक नर वाहणि
१०६	८	पीयरि	पीयारि
१०६	६	मवसे······सांड से	म वसे······सांडसे
१०६	१८	कलहि	कलाहि
१०६	२१	ब्रह्मण	ब्राह्मण
११०	२	ज्वहिलू	वहिलू
११०	६	अह्य	अह्म
११०	७	माहिर	माहरि
११०	१०	चतु मुखि	चतुर्मुखि
११०	१५	विणसा उयू	विणसाडयू
११०	१८	रीर	रीस
१११	४	मालक	मालक
११५	१४	प्रभूँ	प्रामूँ
११६	७	अनुध्र ुतियों	अनुश्रुतियों
११६	२४	कविता जो सिर	कविता का जो सिर
११७	५	दीघ जीवन	दीर्घ जीवन
११८	५	धव तणा	धवलतणा
११६	२	गिणौ	गिणै
११६	४	रतड़ियाँह	रत्तड़ियाँह
११६	१३	गै डसगि	गैडसगि
१२१	१३	गड़-कामणी	घड़-कामणी
१२७	६	गुणोत्कमे	गुणोत्कर्ष
१२८	१३	इसा तरह	इसी तरह
१२६	१३	माना	मान,
१२६	२४	बाह्य	बाह्य
१३०	१	काव्य ग्रन्थ की	काव्य ग्रन्थ को

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३१	१	सर्वोच्च	वे सर्वोच्च
१३४	८	ऊधर	उरध
१३५	४	स्त्रोणि	स्रोणि
१३६	१५	बुददुद	बुदबुद
१३७	१८	खच्चे	खञ्चे
१३८	६	'प्रभात वर्णन'	
१३८	१०	धर हर ताल भरम गोधोख	धर हटताल भमर गोधोख

नोटः—ल़ के स्थान पुर ल अनेक स्थान पर छप गया है, कृपया सुधार कर पढ़ें !

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४१	१५	नमक	नामक
१४२	७	अकबर नाम	'अकबर नामा'
१४२	२१	दुरपा	दुरसा
१४२	२३	दीर्घायु पर	दीर्घायु पा,
१४३	४	जयंताविजयजी	जयंतविजयजी
१४३	१२	विरूद्ध छहत्तरी	विरुद छहत्तरी
१४३	१६	,,	,,
१४५	६	सुख कि सांस	सुख की सांस
१४५	७	समझाया था	समझा था
१४६	४	कोइ	कोई
१४६	२०	पापँट	पाटप
१४६	१८	आइड़ियां	आइड़िया